दादा भगवान ?

दादा भगवान ?

(परम पूज्य दादाश्री का जीवनचरित्र - संक्षेप में)

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक	:	**अजीत सी. पटेल** **दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन,** 1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी, नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009, Gujarat, India. **फोन :** +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77

प्रथम संस्करण	:	2,000 प्रतियाँ	सितम्बर, 2007
रीप्रिन्ट	:	11,100 प्रतियाँ	जुलाई, 2008 से नवम्बर, 2014
नयी रीप्रिन्ट	:	2,000 प्रतियाँ	अक्तूबर, 2024

भाव मूल्य	:	'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!
द्रव्य मूल्य	:	35 रुपए
मुद्रक	:	अंबा मल्टीप्रिन्ट एच.बी.कापडिया न्यू हाइस्कूल के सामने, छत्राल-प्रतापपुरा रोड, छत्राल, ता. कलोल, जि. गांधीनगर-382729, गुजरात **फोन :** +91 79 3500 2142

ISBN/eISBN : 978-93-86289-50-6

Printed in India

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो ऊवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू)
53. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
55. आप्तवाणी - 14 (भाग-1 से 3)
58. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

संपादकीय

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेलवे स्टेशन, प्लेटफॉर्म नं. 3 की बेंच पर श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल बैठे थे। सोनगढ–व्यारा से बड़ौदा जाने के लिए ताप्ती–वेली ट्रेन से उतरकर वे बड़ौदा जाने वाली ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस समय प्रकृति ने रचा अध्यात्म मार्ग का अद्‌भुत आश्चर्य!

श्री अंबालाल मूलजी भाई रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ! जगत् के तमाम आध्यात्मिक प्रश्नों के उत्तर मिले, संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए और प्रश्नों की पूर्णाहूति हुई! जगत् क्या है? कैसे चल रहा है? हम कौन? ये सभी कौन? कर्म क्या है? बंधन क्या है? मुक्ति क्या है? मुक्ति का उपाय क्या है?... इत्यादि जगत् के असंख्य आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण समाधान प्राप्त हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करने वाले, फिर भी परम 'सत्' को ही जानने की, 'सत्'को ही पाने की और बचपन से ही 'सत्' स्वरूप होने की निरंतर कामना करने वाले इस भव्य पात्र में ही 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ।

उन्हें जो प्राप्त हुआ वह तो एक आश्चर्य का सृजन तो था ही लेकिन उससे भी बड़ा आश्चर्य तो यह था कि उन्होंने जो देखा, जाना और अनुभव किया वैसी ही प्राप्ति अन्यों को करवाने की उनकी समर्थता! खुद अपना आत्म कल्याण करके मुक्ति पाने वाले अनेक होंगे लेकिन अपनी तरह हज़ारों को छुड़वाने का सामर्थ्य तो सिर्फ तीर्थंकरों में या ज्ञानियों में भी, कोई विरले ज्ञानी में ही होता है! ऐसे विरल ज्ञानी, जिन्होंने इस कलिकाल के अनुरूप 'इन्स्टन्ट' आत्मज्ञान प्राप्ति का अद्‌भुत मार्ग खोल दिया, जो 'अक्रम' के नाम से प्रचलित हुआ। 'अक्रम' यानी अहंकार का फुल स्टॉप (पूर्ण विराम)। और क्रम

यानी अहंकार का कोमा (अल्पविराम)। अक्रम यानी जो क्रम से नहीं हो, वह। क्रम यानी सीढ़ी चढ़ना और अक्रम यानी लिफ्ट में तुरंत पहुँच जाना। क्रम मुख्य मार्ग है जो नियमित रूप से है। जबकि 'अक्रम' वह, अपवाद मार्ग है, 'डायवर्ज़न' है।

क्रम मार्ग कहाँ तक चलता है? जहाँ तक मन-वचन-काया की एकता होती है, अर्थात् जैसा मन में हो वैसा ही वाणी में हो और वर्तन में हो, जो इस समय निर्विवाद रूप से असंभव है, क्योंकि क्रम का सेतु बीच में टूट गया है और कुदरत ने मोक्षमार्ग जारी रखने के लिए, अंतिम अवसर के तौर पर यह 'डायवर्ज़न' अक्रम मार्ग संसार को उपलब्ध कराया है। इस अंतिम अवसर से जो लाभान्वित हो गया, समझो 'उस' पार निकल गया।

क्रम मार्ग में पात्र की शुद्धि करते-करते, क्रोध-मान-माया-लोभ को शुद्ध करते-करते साधक को अंततः अहंकार पूर्णतया शुद्ध करना पड़ता है, ताकि उसमें क्रोध-मान-माया-लोभ का परमाणु मात्र न रहे, जब अहंकार पूर्णतया शुद्ध होता है तभी शुद्धात्मा स्वरूप के साथ अभेदता होती है।

इस काल में क्रमिक मार्ग असंभव हो जाने के कारण 'अक्रम विज्ञान' के समझ द्वारा मन-वचन-काया की अशुद्धियों को जैसे हैं वैसे रखकर 'डायरेक्ट' अहंकार शुद्ध हो जाता है और अपने स्वरूप के साथ अभेद हो जाए ऐसा संभव हुआ है। उसके बाद मन-वचन-काया की अशुद्धियाँ, क्रमशः उदयानुसार आने पर उनकी संपूर्ण शुद्धि 'ज्ञानी' की आज्ञा में रहने पर साहजिक रूप से हो जाती है।

इस दूषमकाल में कठिन कर्मों के मध्य सभी सांसारिक ज़िम्मेदारियाँ आदर्श रूप में अदा करते-करते भी 'मैं शुद्धात्मा हूँ' यह लक्ष्य निरंतर बना रहता है। 'अक्रम विज्ञान' की यह अद्भुत देन तो देखो! कभी सुनी न हो, कहीं पढ़ी न हो ऐसी अपूर्व बात, जो एक बार तो मानने में ही नहीं आती, फिर भी आज हकीकत बन गई है!

ऐसे अद्भुत 'अक्रम विज्ञान' को प्रकाशित करने वाले पात्र का

चयन कुदरत ने किस आधार से किया होगा, इसका उत्तर तो प्रस्तुत संकलन में अक्रम ज्ञानी के पूर्वाश्रम के प्रसंग और ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् उनकी जागृति की पराकाष्ठा को दर्शाते प्रसंगों से स्वयं प्राप्त होता है।

जीवन में कड़ुवे-मीठे अवसरों से किसका पाला नहीं पड़ा होगा? लेकिन ज्ञानी उनसे जुदा कैसे रह पाए? जीवन की चाँदनी और अमावस का आस्वादन, ज्ञान-अज्ञान दशा में अनुभव करते हुए, तब उन प्रसंगों में ज्ञानी की न्यारी, अनोखी और मौलिक दृष्टि होती है। ऐसे सामान्य अवसरों में अज्ञानी जीवों का हज़ारों बार गुज़रना होता है, लेकिन उनकी न तो कोई अंतर दृष्टि खुलती है और न ही उनके वेदन की सम्यक् दृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। जबकि 'ज्ञानी' तो अज्ञान दशा में भी, अरे! जन्म से ही सम्यक् दृष्टि के धनी होते हैं। प्रत्येक अवसर पर, वीतराग दर्शन के द्वारा खुद सम्यक् मार्ग का संशोधन किया करते हैं। अज्ञानी मनुष्य जिनका अनुभव हज़ारों बार कर चुके हैं, ऐसे अवसरों में से 'ज्ञानी' कोई नया ही निष्कर्ष निकालकर ज्ञान की खोज किया करते हैं।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' (गुणी लोगों के बचपन से ही उनके गुणवान होने के लक्षण दिखाई देने लगते हैं)। इस उक्ति को सार्थक करते हुए उनके बचपन के प्रसंग जैसे कि, जब उनकी माता जी ने वैष्णव संप्रदाय की माला पहनने पर ज़ोर दिया तो वे बोल पड़े 'प्रकाश दिखलाए वही मेरे गुरु। कुगुरु की तुलना में निगुरा ही बेहतर।' ऐसे प्रसंगों के अनुसंधान में किसी व्यक्ति या उसके वर्तन को नज़र अंदाज़ करते हुए, बालदशा में प्रवर्तमान ज्ञानी की अद्‌भुत विचारधारा, अलौकिक दृष्टि और ज्ञान दशा को लक्ष्य में रखकर उसकी स्टडी (अभ्यास) करना उत्तम होगा।

प्रस्तुत संकलन में ज्ञानी पुरुष की वाणी में ही संक्षिप्त रूप से उनके जीवन के प्रसंगो को संकलित किया गया है। इसके पीछे यही अंतर आशय है कि 'प्रकट ज्ञानी पुरुष' की इस अद्‌भुत दशा से जगत् परिचित हो और उसे समझकर उसकी प्राप्ति करे, यही अभ्यर्थना।

डॉ. नीरू बहन अमीन के जय सच्चिदानंद

दादा भगवान?

1. ज्ञान कैसे और कब हुआ?

अक्रम की यह लब्धि हमें प्राप्त हुई

प्रश्नकर्ता : आप श्री को जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वह कैसे प्राप्त हुआ?

दादाश्री : यह हमें प्राप्त हुई लब्धि है।

प्रश्नकर्ता : नैसर्गिक रूप से? यह नैचुरली (कुदरत के क्रम से) प्राप्त हुआ है?

दादाश्री : हाँ, दिस इज़ बट नैचुरल!

प्रश्नकर्ता : आपकी यह जो उपलब्धि है, वह भी सूरत के स्टेशन पर हुई, ऐसी हर एक को नहीं होती, आपको हुई, क्योंकि आपने भी क्रमिक मार्ग पर धीरे-धीरे कुछ किया होगा न?

दादाश्री : बहुत कुछ, सबकुछ क्रमिक मार्ग से ही किया था, लेकिन उदय अक्रम के रूप में आया। क्योंकि केवलज्ञान में अनुत्तीर्ण हुए! परिणाम स्वरूप यह अक्रम उदय में आ ही गया!

क्रम-अक्रम का भेद

प्रश्नकर्ता : पहले यह समझना है कि 'अक्रम विज्ञान' क्या है?

दादाश्री : अहंकार का 'फुल स्टॉप' (पूर्ण विराम) उसका नाम 'अक्रम विज्ञान' और अहंकार का 'कॉमा' (अल्प विराम) उसका नाम

'क्रमिक विज्ञान'। यह अक्रम विज्ञान आंतरिक विज्ञान कहलाता है, जो खुद को सनातन सुख की ओर ले जाता है। अर्थात् अपना सनातन सुख प्राप्त करवाए, वह आत्म विज्ञान कहलाए। और यह जो टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट वाला सुख दिलाए, वह सारा बाह्य विज्ञान कहलाए। बाह्य विज्ञान अंततः विनाशी और विनाशकारी है और 'यह' (अक्रम विज्ञान) सनातन है और सनातन बनाने वाला है!

ज्ञानाग्नि से पाप भस्म

प्रश्नकर्ता : वह प्रक्रिया क्या है कि जो एक घंटे में मनुष्य को चिंता मुक्त करवा सके? उसमें कोई चमत्कार है? कोई विधि है?

दादाश्री : कृष्ण भगवान ने कहा है कि ज्ञानी पुरुष सारे पापों को जलाकर भस्मीभूत कर सकते हैं, ज्ञानाग्नि से! इस ज्ञानाग्नि से हम पापों को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं और फिर वह चिंता मुक्त हो जाता है।

प्रकाश में कहीं कोई फर्क नहीं

प्रश्नकर्ता : क्या आप भगवद् गीता की थ्योरी में मानते हैं?

दादाश्री : सभी थ्योरियाँ मानता हूँ! क्यों नहीं मानूँगा? भगवद् थ्योरी सब एक ही हैं न! इसमें डिफरन्स (फर्क) नहीं है। हमारी थ्योरी और उसमें कोई डिफरन्स नहीं है। प्रकाश में फर्क नहीं है, पद्धति का फर्क है, यह! ज्ञान का प्रकाश तो समान ही है। अन्य मार्गों का और इस मार्ग का, सनातन मार्ग का, जो ज्ञान प्रकाश है वह तो समान ही है लेकिन उसकी पद्धति अलग है। यह अलौकिक पद्धति है, एक घंटे में मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है। 'विदिन वन आवर', चिंता रहित हो जाता है।

साधना, सनातन तत्त्व की ही

प्रश्नकर्ता : आपने पहले उपासना या साधना की थी?

दादाश्री : साधनाएँ तो तरह-तरह की की थीं। लेकिन मैं कोई

ऐसी साधना नहीं करता था कि जिस साधना से किसी वस्तु की प्राप्ति हो। क्योंकि मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं थी। इसलिए ऐसी साधना करने की आवश्यकता ही नहीं थी। मैं तो साध्य वस्तु की साधना करता था। जो विनाशी नहीं है, ऐसी अविनाशी वस्तु के लिए साधना करता था। अन्य साधनाएँ मैं नहीं करता था।

ज्ञान से पहले कोई मंथन?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान से पहले मंथन तो किया होगा न?

दादाश्री : दुनिया की कोई भी चीज़ ऐसी नहीं है कि जिसके बारे में सोचना बाकी रखा हो! इसलिए यह 'ज्ञान' प्रकट हुआ है। यहाँ, आपके मुँह से दो शब्द निकले नहीं कि मुझे आपकी पूरी बात समझ में आ जाती है। हमारे एक मिनट में पाँच-पाँच हज़ार रेवोल्यूशन घूमते हैं। किसी भी शास्त्र का सारांश दो मिनट में निकाल लूँ! पुस्तक में सर्वांश नहीं होता। सर्वांश तो ज्ञानी पुरुष के पास होता है। शास्त्र तो डायरेक्शन (दिशा निर्देश) देते हैं।

इस अवतार में नहीं मिले कोई गुरु

प्रश्नकर्ता : आपके गुरु कौन हैं?

दादाश्री : गुरु तो यदि इस अवतार में प्रत्यक्ष मिलें हों, तो उन्हें गुरु कह सकते हैं। हमें प्रत्यक्ष कोई नहीं मिला। कई साधु-संतो से भेंट हुई। उनके साथ सत्संग किया था, उनकी सेवा भी की थी लेकिन गुरु करने योग्य कोई नहीं मिला। हर एक भक्त, जो ज्ञानी हुए हैं, उनकी सभी रचनाएँ पढ़ी थीं लेकिन प्रत्यक्ष कोई नहीं मिला था।

अर्थात् ऐसा है न, हम श्रीमद् राजचंद्र जी (गुजरात में हुए ज्ञानी पुरुष) को गुरु नहीं मान सकते, क्योंकि प्रत्यक्ष मिले होते तो गुरु मानते (श्रीमद् दादाजी को प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिले थे)। अलबत्ता उनकी पुस्तकों का आधार बहुत अच्छा रहा। अन्य पुस्तकों का भी आधार था लेकिन राजचंद्र जी की पुस्तकों का आधार अधिक था।

मैं तो श्रीमद् राजचंद्र जी की पुस्तकें पढ़ता था, भगवान महावीर के शास्त्र पढ़ता था, कृष्ण भगवान की गीता का पठन करता था, वेदांत के खंडों का भी वाचन किया था, स्वामीनारायण संप्रदाय की पुस्तकें भी पढ़ी थी और मुस्लिम साहित्य का भी पठन किया था, और वे सभी क्या कहना चाहते हैं, सभी के कहने का अर्थ क्या है, हेतु क्या है, यह जान लिया था। सभी का सही है, लेकिन अपनी-अपनी कक्षा के अनुसार। अपनी-अपनी डिग्री पर सही हैं। यदि तीन सौ साठ डिग्री मानी जाए तो कोई पचास डिग्री पर आया है, कोई अस्सी डिग्री पर पहुँचा है, कोई सौ डिग्री पर है, किसी की डेढ़ सौ डिग्री है, सत्य सभी का है, लेकिन किसी के पास भी तीन सौ साठ डिग्री नहीं है। भगवान महावीर की तीन सौ साठ डिग्री थी।

प्रश्नकर्ता : यह अभ्यास कहाँ पर हुआ आपका?

दादाश्री : यह अभ्यास? वह तो कई जन्मों का अभ्यास होगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन शुरू-शुरू में, जन्म होने के पश्चात् किस तरह का था? जन्म लेने के बाद शुरुआत कहाँ से हुई?

दादाश्री : जन्म होने के बाद वैष्णव धर्म में थे, बाद में स्वामीनारायण धर्म में गए, अन्य धर्मों में गए, शिव धर्म में गए, फिर श्रीमद् राजचंद्र जी के आश्रम में गए, फिर महावीर स्वामी की सभी पुस्तकें पढ़ी, यह सब बार-बार पढ़ा! ऐसी हमारी दशा थी, साथ-साथ कारोबार भी चलता था।

सिन्सियरिटी तो निरंतर वीतरागों के प्रति ही

प्रश्नकर्ता : आपने ऐसा और कुछ किया था क्या?

दादाश्री : कुछ भी नहीं, लेकिन निरंतर वीतरागों के प्रति सिन्सियरिटी (निष्ठा)! कृष्ण भगवान के प्रति सिन्सियरिटी! इस संसार के प्रति रुचि नहीं थी। सांसारिक लोभ बिल्कुल भी नहीं था। जन्म से ही मुझमें लोभ की प्रकृति ही नहीं थी। अरे! किसी बड़े आदमी

का बगीचा हो, जिसमें अमरूद हो, अनार हो, मोसंबी हो, ऐसे बड़े-बड़े बगीचों में उस समय सभी बच्चे घूमने जाते थे, फलों की गठरियाँ बाँधकर घर लाते थे लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं करता था। अर्थात् लोभ प्रकृति ही नहीं थी। मान इतना सारा था कि संसार में मेरे जैसा और कोई नहीं है। मान! बड़ा ज़बरदस्त मान! और वह तो मुझे किस कदर काटा, यह तो मैं ही जानता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानप्राप्ति से पहले आपकी कैसी परिणति थी?

दादाश्री : मुझे सम्यक्त्व होगा ऐसा लगता था। बाकी, सभी पुस्तकों की स्टडी (अभ्यास) का लेखा-जोखा करके यह खोज निकाला कि 'वस्तु क्या है?' यह सब समझ में आ गया था। और तीर्थंकर, वीतराग ही सच्चे पुरुष हैं और वीतरागों का मत सही है, यह ठान लिया था। वही अनंतकाल का आराधन था। अर्थात् सबकुछ वही था। व्यवहार जैन-वैष्णव का समन्वय था। कुछ मामलों में वैष्णव व्यवहार और कुछ मामलों में जैन व्यवहार था। मैं उबला हुआ पानी सदैव पीया करता था, बिज़नेस पर भी उबला हुआ पानी ही पीया करता था! आपका भी ऐसा जैन व्यवहार नहीं रहा होगा। लेकिन वह ज्ञान प्रकट होने की वजह नहीं है। उसकी वजह तो अन्य अनेकों एविडेन्सों का आ मिलना है। अगर ऐसा नहीं होता तो अक्रम विज्ञान कैसे प्रकट होता? अक्रम विज्ञान में चौबीस तीर्थंकरों का पूरा विज्ञान सम्मिलित है। चौबीस तीर्थंकरों के अवधि काल में जो नहीं समझ सके, उन्हीं को समझाने के लिए यह विज्ञान है।

सच्चे दिल वालों को 'सच्चा' मिला

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपको अक्रम ज्ञान प्रकट कैसे हुआ? अपने आप साहजिक रूप से या फिर कोई चिंतन किया था?

दादाश्री : अपने आप 'बट नैचुरल' (प्राकृतिक रूप से) हुआ! हमने ऐसा कोई चिंतन नहीं किया था। हमें तो इतना सारा कहाँ से होता? हमें ऐसा लगता था कि अध्यात्म में कुछ प्राप्ति होगी। सच्चे

दिल वाले थे। सच्चे दिल से किया था, इसलिए ऐसा कुछ परिणाम आएगा, कुछ सम्यक्त्व जैसा होगा, ऐसा लगता था! सम्यक्त्व की थोड़ी झलक होगी, उसका उजाला होगा, उसके बजाय यह तो पूर्ण रूप से उजाला हो गया!

मोक्ष जाने में संसार बाधा रूप नहीं

प्रश्नकर्ता : आपने संन्यास क्यों नहीं लिया?

दादाश्री : संन्यास, ऐसा तो उदय ही नहीं था। इसका अर्थ यह नहीं कि संन्यास के प्रति मुझे चिढ़ है लेकिन मुझे ऐसा कोई उदय नज़र नहीं आया था और मेरी ऐसी दृढ़ मान्यता रही है कि मोक्षमार्ग में संसार बाधा रूप नहीं होना चाहिए। संसार बाधा रूप नहीं है, अज्ञान बाधा रूप है। हाँ, भगवान को इस त्याग मार्ग का उपदेश करना पड़ा, वह सामान्य भाव से किया गया है। वह किसी विशेष भाव से नहीं किया है। विशेष भाव तो यह है कि संसार बाधा रूप नहीं है, ऐसा हम गारन्टी के साथ कहते हैं।

ज्ञान प्राकट्य में जगत् का पुण्य

प्रश्नकर्ता : यह अक्रम ज्ञान कितने जन्मों का लेखा-जोखा है?

दादाश्री : यह जो अक्रम ज्ञान प्रकट हुआ है वह तो अनंत जन्मों का लेखा-जोखा, सब मिलाकर अपने आप कुदरती रूप से प्रकट हो गया है।

प्रश्नकर्ता : यह आपको 'बट नैचुरल' हुआ, लेकिन कैसे?

दादाश्री : कैसे अर्थात् उसके सारे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स आ मिले, इसलिए प्रकट हो गया। यह तो लोगों को समझाने हेतु मुझे 'बट नैचुरल' कहना पड़ा। बाकी यों तो सारे साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स आ मिलने पर वह प्रकट हो गया।

प्रश्नकर्ता : कौन से एविडेन्स आ मिले?

दादाश्री : सभी तरह के एविडेन्स आ मिले! सारे जगत् का

कल्याण होने वाला होगा, वह समय भी परिपक्व हुआ होगा। होने के लिए कुछ निमित्त तो चाहिए न?

ज्ञान होने के पूर्व की दशा

वह दशा ज्ञानांक्षेपकवंत कहलाए। यानी आत्मसंबंधी विचारणा की धारा ही नहीं टूटती। वह धारा मुझे थी, ऐसी दशा थी। हाँ, कई दिनों तक लगातार वही चीज़ चलती रहती, धारा टूटती ही नहीं थी। मैंने शास्त्रों में देखा था कि भैया, यह दशा कौन सी है? तब मेरी समझ में आया कि यह तो ज्ञानांक्षेपकवंत दशा वर्तती है!

आपको किसकी आराधना?

प्रश्नकर्ता : लोग दादाजी के दर्शन को आते हैं लेकिन दादाजी किसकी सेवा-पूजा करते हैं? उनके आराध्य देवता कौन हैं?

दादाश्री : भीतर भगवान प्रकट हुए हैं, उनकी पूजा करता हूँ।

'मैं' और 'दादा भगवान' नहीं है एक

प्रश्नकर्ता : फिर आप खुद को भगवान कैसे कहलवाते हैं?

दादाश्री : मैं खुद भगवान नहीं हूँ। दादा भगवान को तो मैं भी नमस्कार करता हूँ। मैं खुद तीन सौ छप्पन डिग्री पर हूँ और दादा भगवान तीन सौ साठ डिग्री पर हैं। इस प्रकार मेरी चार डिग्री कम है, इसलिए मैं दादा भगवान को नमस्कार करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : ऐसा किसलिए?

दादाश्री : क्योंकि मुझे अभी चार डिग्री पूरी करनी है। मुझे पूरी तो करनी होगी न? चार डिग्री अधूरी रही, अनुत्तीर्ण हुआ, लेकिन फिर से उत्तीर्ण हुए बगैर छुटकारा है क्या?

प्रश्नकर्ता : आपको भगवान बनने का मोह है?

दादाश्री : मुझे तो भगवान बनना बहुत बोझ समान लगता है। मैं तो लघुत्तम पुरुष हूँ। इस संसार में कोई भी मुझसे लघु नहीं, ऐसा

लघुत्तम पुरुष हूँ। इसलिए भगवान बनना बोझ लगता है, बल्कि शर्म आती है।

प्रश्नकर्ता : यदि भगवान नहीं बनना चाहते तो फिर यह चार डिग्री पूरी करने का पुरुषार्थ किसलिए?

दादाश्री : वह तो मेरे मोक्ष प्राप्त करने के लिए। मुझे भगवान बनकर क्या लेना है? भगवान तो जो भी भगवत् गुण धारण करतें हैं, वे सभी भगवान बनेंगे। भगवान शब्द विशेषण है। जो भी मनुष्य उसके लिए तैयार होगा, लोग उसे भगवान कहेंगे ही।

यहाँ प्रकट हुए, चौदह लोक के नाथ!

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान' शब्द का प्रयोग किसके लिए किया गया है?

दादाश्री : दादा भगवान के लिए! मेरे लिए नहीं। मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ।

प्रश्नकर्ता : कौन से भगवान?

दादाश्री : दादा भगवान, जो चौदह लोक के नाथ हैं। जो आपके भीतर भी हैं, लेकिन आपमें प्रकट नहीं हुए हैं। आपके भीतर अव्यक्त रूप में बसे हैं और 'यहाँ' (हमारे भीतर) व्यक्त हो गए हैं। जो व्यक्त हुए हैं, वे फल दें ऐसे हैं। अगर एक बार भी आप नाम लोगे न, तो काम बन जाए ऐसा है। लेकिन यदि पहचानकर बोलेंगे तो कल्याण हो जाएगा। सांसारिक चीज़ों की कोई अड़चन होगी तो वह अड़चन भी दूर हो जाएगी। लेकिन उसमें लोभ मत करना। यदि लोभ करने गए तो कोई अंत ही नहीं आने वाला। दादा भगवान कौन हैं, यह आपकी समझ में आया?

'दादा भगवान' का स्वरूप क्या?

प्रश्नकर्ता : दादा भगवान का स्वरूप क्या है?

दादाश्री : दादा भगवान का स्वरूप क्या? भगवान! और क्या?

जिन्हें इस वर्ल्ड (दुनिया) में किसी प्रकार की ममता नहीं हैं, जिनमें अहंकार नहीं हैं, जिनमें बुद्धि नहीं हैं, वैसा दादा का स्वरूप!

आत्मज्ञान से ऊपर और केवलज्ञान से नीचे

ज्ञानी पुरुष को केवलज्ञान चार डिग्री से रुका हुआ है और आत्मज्ञान से आगे है। आत्मज्ञान से आगे निकल गया और केवलज्ञान के स्टेशन तक नहीं पहुँचा है। इसमें बीच वाले हिस्से में जो ज्ञेय हैं न, उनका जगत् को पता नहीं होता। हम यह जो कहते हैं न, उसमें से एक वाक्य का भी जगत् को पता नहीं है, भान ही नहीं है। वैसे हमारे कहने से बुद्धि से उसे समझ में आ जाता है, समझ में नहीं आए ऐसा नहीं है। बुद्धि वह प्रकाश है, उस प्रकाश के द्वारा सामने वाला जो कहता है वह समझ में आ जाता है कि बात सही है। लेकिन फिर से उसे याद नहीं आता। सिर्फ ज्ञानी पुरुष का वाक्य ऐसा है कि उसमें वचनबल होने के कारण ज़रूरत के समय हाज़िर हो जाता है। जब संकट का समय आए न, तब वह वाक्य हाज़िर हो जाए, उसे वचनबल कहते हैं।

संसार देखा लेकिन जाना नहीं पूर्ण रूप से

हम केवलज्ञान में अनुत्तीर्ण हुए मनुष्य हैं।

प्रश्नकर्ता : चार अंश! वे कौन से चार अंश?

दादाश्री : यह जो चारित्रमोह आपको नज़र आता है, इसकी भले ही मुझे मूर्च्छा नहीं हो, फिर भी सामने वाले को नज़र आता है, इसलिए उतने अंश कम हो जाते हैं, और दूसरा, संसार मेरी समझ में अवश्य आया है लेकिन अभी तक जानने में नहीं आया है। केवलज्ञान यानी जानने में भी आना चाहिए, जबकि यह तो समझ में ही आया है।

प्रश्नकर्ता : जो जानने में नहीं आया हो, उसका भेद कैसे किया जाए?

दादाश्री : समझ में आया है, जानने में नहीं आया है। यदि

जानने में आया होता तो केवलज्ञान कहलाता। समझने में आया है इसलिए केवलदर्शन कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : यह 'जाना नहीं लेकिन समझ में आया है' ज़रा समझ में नहीं आया।

दादाश्री : समझ में यानी यह जगत् क्या है, कैसे उत्पन्न हुआ, मन क्या है, मन के फादर-मदर (माता-पिता) कौन हैं, यह बुद्धि क्या है, यह चित्त क्या है, अहंकार क्या है, मनुष्य का जन्म क्यों होता है, फलाँ का जन्म कैसे होता है, यह सब कैसे चलता है, कौन चलाता है, भगवान चलाते हैं या अन्य कोई चलाता है, मैं कौन हूँ, आप कौन हैं, ये सारी बातें हमारी समझ में आ गई हैं और दिव्यचक्षु के द्वारा प्रत्येक जीव में आत्मा नज़र आता है। अर्थात्, अगर सबकुछ समझ में आ जाए तो उसे केवलदर्शन कहते हैं।

बोल रहा है, वह है टेपरिकॉर्ड

दादाश्री : यह कौन बोल रहा है ? आपके साथ कौन बात कर रहा है ?

प्रश्नकर्ता : उस ज्ञान का तो मुझे पता नहीं।

दादाश्री : अर्थात् 'मैं' आपसे बात नहीं करता हूँ। 'मैं' तो क्षेत्रज्ञ के तौर पर देखा करता हूँ। 'मैं' अपने क्षेत्र में ही रहता हूँ। आपसे जो बात करता है वह तो रिकॉर्ड बात करता है, कम्प्लीट (पूर्ण रूप से) रिकॉर्ड है। अत: इस पर से दूसरा रिकॉर्ड निकल सकता है। यह तो पूर्ण रूप से मिकेनिकल (यांत्रिक) रिकॉर्ड है।

अर्थात् यह जो दिखाई देते हैं न, वे भादरण के पटेल हैं और यह जो बोल रहे हैं (मुँह से जो वाणी निकल रही है) वह टेपरिकॉर्डर है, ओरिजिनल टेपरिकॉर्डर है ! और भीतर दादा भगवान प्रकट हो गए हैं उनके साथ मैं एकता से रहता हूँ। कभी किसी समय बाहर निकलकर अंबालाल के साथ एकाकार होता हूँ। दोनों तरफ का व्यवहार करने

देना पड़ता है। अंबालाल के साथ भी जाना पड़ता है। नहीं तो फिर अंदर अभेद रहते हैं। ऐसा कहा जाएगा कि अभी यह व्यवहार में आया है वर्ना खुद अंदर अभेद रहता है।

गुरुपूर्णिमा के दिन पूर्णदशा में आत्मचंद्र

हमारे यहाँ ये तीन दिन उत्तम कहलाते हैं : नए साल का पहला दिन, जन्म जयंती और गुरुपूर्णिमा। इन तीन दिनों हम दूसरे किसी भी व्यक्ति के साथ कोई व्यवहार नहीं रखते, अर्थात् उस समय हम अपने पूर्ण स्वरूप में एकाकार रहते हैं। मैं (ज्ञानी पुरुष) अपने स्वरूप में (दादा भगवान के साथ) एकाकार रहता हूँ, यानी उस दर्शन से फल मिलता है! इसलिए उस पूर्ण स्वरूप के दर्शन करने का माहात्म्य है न!

ग्यारहवाँ आश्चर्य यह अक्रम विज्ञान!

भगवान महावीर तक दस आश्चर्य हुए और यह ग्यारहवाँ आश्चर्य है। ज्ञानी पुरुष व्यापारी के रूप में वीतराग हैं, व्यापारी भाव से वीतराग हैं। ऐसे दर्शन हों वह आश्चर्य ही कहा जाएगा न! देखिए न, ये हमारे कोट और टोपी! ऐसा तो कहीं होता होगा ज्ञानी में? उन्हें परिग्रह से क्या लेना-देना? जिन्हें कुछ नहीं चाहिए, इसके बावजूद भी वे परिग्रह में फँसे हैं! उन्हें कुछ नहीं चाहिए, फिर भी हैं अंतिम दशा में! लेकिन लोगों के भाग्य में नहीं होगा, इसलिए इस संसारी भेष में हैं! अर्थात् यदि त्यागी का भेष होता तो लाखों-करोड़ों लोगों का काम बन जाता! लेकिन इन लोगों के पुण्य इतने कच्चे हैं!

मैंने जो सुख पाया, वह सभी पाएँ

प्रश्नकर्ता : आपको धर्म प्रचार की प्रेरणा किसने दी?

दादाश्री : धर्म प्रचार की प्रेरणा वह सारी कुदरती है। मुझे खुद को जो सुख उत्पन्न हुआ, उससे भावना हुई कि इन लोगों को भी ऐसा ही सुख हो। यही प्रेरणा!

लोग मुझसे पूछा करते हैं कि 'आप जगत् कल्याण की निश्चित

मनोकामना कैसे पूर्ण करेंगे?' आपकी अब उम्र हो गई! सुबह उठते-उठते, चाय पीते-पीते दस तो बज ही जाते हैं। 'अरे भैया, हमें स्थूल रूप में कुछ नहीं करना, सूक्ष्म रूप में हो रहा है सब।' यह स्थूल तो मात्र दिखावा है। स्थूल का आधार तो देना ही पड़ता है न!

हृदय भिगोए, ज्ञानी की करुणा

प्रश्नकर्ता : आप जैसे वीतरागी का लोकसंपर्क से क्या लेना देना?

दादाश्री : वीतराग भाव, और कोई संबंध नहीं है। लेकिन इस समय तो पूर्ण वीतराग हैं ही नहीं न! आप जिनसे पूछ रहे हैं वे इस समय पूर्ण वीतराग नहीं हैं! अभी तो हम खटपटिया वीतराग हैं। खटपटिया यानी क्या कि जो हमेशा उसी भावना में रहते हैं कि कैसे इस जगत् का कल्याण हो। इस कल्याण हेतु खटपट करते हैं (अपनी शक्ति व्यय करते हैं), बाकी, वीतरागी को तो जनसंपर्क से कुछ लेना-देना नहीं होता। पूर्ण वीतराग तो केवलदर्शन दिया करते हैं, अन्य खटपट या कुछ नहीं करते हैं, बिल्कुल भी खटपट नहीं करते!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वीतरागी जो जनसंपर्क करते हैं, क्या वे अपने कर्म खपाने के लिए कर रहे हैं?

दादाश्री : अपना हिसाब पूरा करने के लिए, दूसरों के लिए नहीं। उनकी और कोई भावना नहीं है। हमारी भावना है कि इन लोगों का कल्याण हो। जैसा हमारा कल्याण हुआ ऐसा सभी का कल्याण हो, ऐसी हमारी भावना रहती है। वीतरागों को ऐसा नहीं होता। बिल्कुल भावना ही नहीं, संपूर्ण वीतराग! और हमारी तो यह एक तरह की भावना है। इसीलिए सुबह जल्दी उठकर बैठ जाते हैं, शांति से। और स्कूल (सत्संग) शुरू कर देते हैं, जो रात के साढ़े ग्यारह बजे तक चलता रहता है। अर्थात् ऐसी हमारी भावना है। क्योंकि हमारे जैसा सुख प्रत्येक को प्राप्त हो! इतने सारे दु:ख किसलिए? दु:ख है ही नहीं और बिना वजह दु:ख भुगत रहे हैं। यह नासमझी निकल जाए तो दु:ख चला जाएगा। अब नासमझी कैसे निकले? कहने से नहीं

निकलती! दिखाने से निकलती है। आप करके दिखाओ तो निकले! इसलिए हम तो करके बताते हैं। इसे मूर्त स्वरूप कहते हैं। अतः श्रद्धा की मूर्ति कहे जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप्तपुरुष की वाणी, वर्तन और विचार कैसे होते हैं?

दादाश्री : वह सब मनोहर होते हैं, मन को हरने वाले होते हैं, मन प्रसन्न हो जाता है। उनका विनय अलग तरह का होता है। वह वाणी अलग तरह की होती है। विदाउट इगोइज़म (निर्अहंकारी) वर्तन होता है। बिना इगोइज़म का वर्तन संसार में शायद ही कहीं देखने मिलता है वर्ना मिलता ही नहीं न!

ज्ञानी किसे कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी की व्याख्या क्या है?

दादाश्री : जहाँ सदैव प्रकाश हो। सबकुछ जानते हों, जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं हो। ज्ञानी अर्थात् उजाला। उजाला यानी जहाँ किसी भी प्रकार का अंधेरा ही न हो!

और ज्ञानी वर्ल्ड में कभी कभार एकाध होते हैं, दो नहीं होते। उनका जोड़ी नहीं होता। जोड़ी होगी तो स्पर्धा होगी। ज्ञानी होना, यह नैचुरल एडजस्टमेन्ट है। ज्ञानी, कोई अपने आप नहीं बन सकता!

ज्ञानी पुरुष तो मुक्त हुए होते हैं। बेजोड़ होते हैं। कोई उनकी स्पर्धा नहीं कर सकता क्योंकि स्पर्धा करने वाला ज्ञानी नहीं होता।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अप्रतिबद्ध

वीतरागों ने कहा है, कि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष के चरणार्विंद की भजना करेंगे तो हल आएगा। कोई द्रव्य उन्हें बाँध नहीं सकता, कोई काल उन्हें बाँध नहीं सकता, कोई भाव उन्हें बाँध नहीं सकता और ना ही कोई क्षेत्र उन्हें बाँध सकता है। संसार में ये चार चीज़ें

ही हैं, जिनसे संसार खड़ा है। और जो द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से निरंतर अप्रतिबद्ध रूप से विचरते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष के चरणार्विंद की भजना करने के लिए भगवान ने कहा है।

ना राग-द्वेष, न त्यागात्याग

ज्ञानी पुरुष किसे कहेंगे कि जिन्हें त्याग अथवा अत्याग संभव नहीं, सहजभाव से होते हैं। वे राग-द्वेष नहीं करते हैं। सिर्फ उनकी विशेष विलक्षणता क्या होती है कि उन्हें राग-द्वेष नहीं होता।

दृष्टि हुई निर्दोष, देखा जग निर्दोष

सारे संसार में मुझे कोई दोषित नज़र नहीं आता। मेरी जेब काटने वाला भी मुझे दोषित नहीं दिखाई देता। उस पर करुणा आती है। हम में दया बिल्कुल भी नहीं होती! मनुष्यों में दया होती है, 'ज्ञानी पुरुष' में दया नहीं होती। वे द्वंद्व से मुक्त हुए होते हैं। हमारी दृष्टि ही निर्दोष हो गई होती है। यानी तत्त्वदृष्टि होती है, अवस्था दृष्टि नहीं होती। सभी में सीधा आत्मा ही नज़र आता है।

2. बाल्यावस्था

माँ से पाया अहिंसा धर्म

हमारे माता जी मुझसे 36 वर्ष बड़े हैं। एक दिन मैंने मदर (माँ) से पूछा कि, 'घर में खटमल हो गए हैं, आपको नहीं काटते क्या?' तब मदर ने कहा, 'हाँ बेटा, काटते तो हैं लेकिन वे बेचारे दूसरों की तरह थोड़े ही साथ में टिफीन लेकर आते हैं कि 'हमें कुछ दीजिए, माई-बाप!' वे बेचारे कोई बर्तन लेकर तो नहीं आते, उन्हें जितना खाना हो उतना खाकर चले जाते हैं। मैंने कहा, 'धन्य हैं माता जी आप! और आपके इस बेटे के भी धन्यभाग हैं!'

हम तो खटमल को भी लहू पीने देते थे कि यहाँ आया है तो अब भोजन करके जा। क्योंकि हमारा यह होटल (शरीर) ऐसा है कि यहाँ किसी को कोई दु:ख नहीं होना चाहिए, यही हमारा व्यवसाय!

इसलिए खटमलों को भी भोजन करवाया है। अब यदि उन्हें भोजन नहीं करवाते तो उसके लिए सरकार हमें कोई दंड देने वाली थी ? नहीं। हमें तो आत्मा की प्राप्ति करनी थी! हमेशा चोविहार, हमेशा कंदमूल त्याग, हमेशा उबला हुआ पानी, यह सब करने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी! और इसी वजह से, यह प्रकट हुआ, पूरा 'अक्रम विज्ञान' प्रकट हुआ! जो पूरी दुनिया को स्वच्छ बना दे, ऐसा विज्ञान प्रकट हुआ है!

माता के संस्कार ने मार खाना सिखाया

मेरी माता जी थीं ही ऐसी! माता जी तो मुझे अच्छी सीख देती थीं। बचपन में मैं एक लड़के को पीट कर घर आया था। उस लड़के को खून निकल आया था। माता जी को इसका पता चला, तो उन्होंने मुझसे कहा कि, 'बेटा, उसे खून निकला। ऐसे ही यदि तुझे कोई मारे और खून निकले तो मुझे तेरी दवाई करनी पड़ेगी न ? इस समय उस लड़के की माँ को भी उसकी दवाई करनी पड़ती होगी न ? और वह बेचारा कितना रोता होगा ? उसको कितना दुःख होता होगा ? इसलिए तू मार खाकर आना लेकिन कभी भी किसी को मारकर मत आना। यदि तू मार खाकर आएगा, तो मैं तेरी दवाई करूँगी'। अब बताओ, ऐसी माँ महावीर बनाएगी या नहीं बनाएगी ? इस प्रकार माता जी ने संस्कार भी उच्च कोटि के दिए हैं।

उसमें घाटा किसका ?

मैं बचपन में थोड़ा-बहुत रूठ जाता था। ज़्यादा नहीं! कभी-कभी रूठ जाता था। फिर मैंने हिसाब निकालकर देखा कि रूठने में सिर्फ घाटा ही होता है, इसलिए फिर तय ही कर लिया कि कोई हमारे साथ कैसा भी व्यवहार करे फिर भी कभी रूठना ही नहीं है। मैं रूठा ज़रूर था, लेकिन उस दिन सुबह मिलने वाला दूध खोया! उस दिन मैंने शाम होने के बाद हिसाब लगाया कि आज सारे दिन में मैंने क्या-क्या गँवाया।

माता जी से मुझे क्या शिकायत थी ? 'मुझे और भाभी, दोनों

को आप एक समान क्यों समझती हैं माँ? भाभी को आधा सेर दूध और मुझे भी आधा सेर दूध देती हो? उन्हें कम दो।' मुझे आधा सेर मंजूर था। मुझे ज़्यादा नहीं चाहिए था लेकिन भाभी का कम करने को कहा, डेढ़ पाव करो। तब माता जी ने मुझे क्या कहा? 'तेरी माँ तो यहाँ है लेकिन उसकी माँ यहाँ नहीं है न! उस बेचारी को बुरा लगेगा। उसे दुःख होगा। इसलिए एक सरीखा ही देना चाहिए।' फिर भी मुझे स्वीकार नहीं होता था। माता जी बार-बार समझाती रहतीं, कई तरह से समझाने का व्यर्थ प्रयत्न किया करती थीं! लेकिन एक दिन मैं अड़ गया और उसमें घाटा मेरा ही हुआ। इसलिए फिर तय किया कि अब दोबारा हठ नहीं करना है।

कम उम्र में भी सही समझ

बारह साल का था जब गुरु जी से बंधवायी हुई कंठी टूट गई। तब माता जी ने कहा कि, 'हम यह कंठी फिर से बंधवाएँगे'। तो मैंने कहा, 'हमारे पुरखों ने जब इस कुएँ में छलाँग लगाई होगी, तब इस कुएँ में पानी होगा, लेकिन आज जब मैं इस कुएँ में झाँकता हूँ तो बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देते हैं, पानी दिखाई नहीं देता बल्कि बड़े-बड़े साँप दिखाई देते हैं। मैं इस कुएँ में गिरना नहीं चाहता'। बाप-दादा जिस कुएँ में गिरे उसमें हम भी गिरें ऐसा कहीं लिखा है क्या? भीतर देखो, पानी है या नहीं, यदि है तो कूद पड़ो और यदि पानी न हो तो गिरकर अपना सिर तुड़वाने से क्या फायदा?

तब गुरु यानी 'प्रकाश देने वाला' ऐसा अर्थ मैं समझता था। यदि वे मुझे प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान नहीं देते, प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं देते तो मुझे उनसे ठंडे पानी के छींटे या पानी के घड़े डलवाकर कंठी नहीं बंधवानी है। यदि मुझे ऐसा लगे कि इन्हें गुरु करना योग्य है तो मैं ठंड़ा पानी तो क्या, हाथ कटवाने को कहेंगे तो हाथ भी काटकर दे दूँगा। हाथ काट लें तो क्या, अनंत अवतारों से हाथ लिए ही फिरते हैं न? अगर कोई हथियार से हाथ काट डाले तो काटने देते हैं न? तो यदि गुरु काटे तो क्या नहीं काटने देंगे? कोई लुटेरा काट ले तो

लोग काटने दें न? और यदि गुरु काटे तो? लेकिन गुरु जी बेचारे काटने वाले हैं ही नहीं। लेकिन मान लीजिए शायद काटने को कहें, तो हमारे पास ऐसा न करने की कोई वजह है क्या?

इसलिए जब मदर ने कहा कि तुझे 'निगुरा' कहेंगे, तब उन दिनों 'निगुरा' यानी क्या? इसकी मुझे समझ नहीं थी। मैं मानता था कि यह शब्द उन लोगों का कोई एडजस्टमेन्ट होगा, और वे 'निगुरा' कहकर फज़ीहत करते होंगे लेकिन 'बिना गुरु का' ऐसा उसका अर्थ उन दिनों मुझे मालूम नहीं था। इसलिए मैंने कहा कि, 'लोग मुझे निगुरा कहेंगे, मेरी फज़ीहत होगी, इससे ज़्यादा और क्या कहने वाले हैं?' लेकिन बाद में मैं इसका अर्थ समझ गया था।

नहीं चाहिए ऐसा मोक्ष

तेरह साल की उम्र में स्कूल से समय निकालकर वहाँ नज़दीक ही संतपुरुष के आश्रम में उनके दर्शन करने जाता था। वहाँ पर उत्तर भारत के कुछ संतों का निवास था। वे बड़े सात्विक थे, इसलिए मैं तेरह साल की उम्र में उनकी चरण सेवा किया करता था। उस समय वे मुझे कहने लगे कि, 'बच्चा, भगवान तुम्हें मोक्ष ले जाएँगे'। मैंने कहा, 'साहब, ऐसी बात नहीं करें तो मुझे अच्छा लगेगा। ऐसी बात मुझे पसंद नहीं है!' उन्हें लगा कि नादान बच्चा है न, इसलिए समझता नहीं है! फिर मुझे कहा, 'धीरे-धीरे तेरी समझ में आएगा'। तब मैंने कहा, 'ठीक है, साहब' लेकिन मुझे तो बड़े-बड़े विचार आने लगे कि भगवान मुझे मोक्ष में ले जाएँ, फिर वहाँ मुझे बिठाएँगे और यदि उनकी पहचान वाला कोई आएगा तो मुझे कहेंगे, 'चल उठ यहाँ से' तब? नहीं चाहिए आपका ऐसा मोक्ष! उसके बजाय बीवी के साथ प्याज़ के पकौड़े खाएँ और मौज़ उड़ाएँ तो क्या बुराई है उसमें? उसकी तुलना में यह मोक्ष बेहतर है फिर! यदि वहाँ कोई उठाने वाला है और मालिक है तो ऐसा मोक्ष हमें नहीं चाहिए।

अर्थात् तेरह साल की उम्र में ऐसी स्वतंत्रता जाग्रत हुई थी कि कोई भी मेरा मालिक हो तो ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। और यदि

नहीं है तो मेरी यही कामना है कि मुझे कोई मालिक नहीं चाहिए और कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं चाहिए। अन्डरहैन्ड मुझे पसंद ही नहीं है।

'जहाँ बैठे हों वहाँ से कोई उठाए', ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। जहाँ मालिक नहीं, अन्डरहैन्ड भी नहीं, ऐसा वीतरागों का मोक्ष मैं चाहता हूँ। उन दिनों मालूम नहीं था कि वीतरागों का मोक्ष ऐसा होता है। लेकिन तब से मेरी समझ में आ गया था कि मालिक नहीं चाहिए। उठ यहाँ से कहें, ऐसा तुम्हारा मोक्ष मैं नहीं चाहता। ऐसे भगवान रहे अपने घर! मुझे तुमसे क्या मतलब? तू यदि भगवान है तो मैं भी भगवान हूँ! भले ही, तुम कुछ देर के लिए मुझे अपने अंकुश में रखने की ताक में हो! आइ डोन्ट वान्ट (मुझे ज़रूरत नहीं)! ऐसी भूख किसलिए? इन पाँच इन्द्रियों की लालच की खातिर? क्या रखा है इन लालचों में? जानवरों को भी लालच है और हमें भी लालच है, फिर हम में और जानवरों में अंतर क्या रहा?

परवशता, आइ डोन्ट वान्ट

किसी की नौकरी नहीं करूँगा ऐसा पहले से ही खयाल था। नौकरी करना मुझे बहुत दुःखदायी लगता था। यों ही मौत आ जाए तो बेहतर लेकिन नौकरी यानी बॉस (मालिक) मुझे डाँटे? वह बर्दाश्त से बाहर था। 'मैं नौकरी नहीं करूँगा' यह मेरी बड़ी बीमारी थी और इसी बीमारी ने मेरी रक्षा की। आखिर एक दोस्त ने पूछा, 'बड़े भैया घर से निकाल देगें तब क्या करोगे?' मैंने कहा, 'पान की दुकान करूँगा'। उसमें भले ही रात दस बजे तक लोगों को पान खिलाकर, फिर ग्यारह बजे घर पर जाकर खा-पीकर सो जाऊँगा। उसमें चाहे तीन रुपए ही मिलें तो तीन में ही गुज़ारा करूँगा और दो मिले तो दो में चलाऊँगा! मुझे सब निबाहना आता है, लेकिन मुझे परतंत्रता बिल्कुल पसंद नहीं है। परवशता, आइ डोन्ट वान्ट (मुझे नहीं चाहिए)!

अन्डरहैन्ड को हमेशा बचाया

जीवन में मेरा धंधा क्या रहा? मेरे ऊपरी के सामने मुकाबला

और अन्डरहैन्ड (अधीनता में काम करने वाले) की रक्षा। यह मेरा नियम था। मुकाबला करना लेकिन अपने से ऊपर वाले के साथ। सारा संसार किसके वश में रहता है? मालिक (अपने से जो ऊपर हो) के! और अन्डरहैन्ड को डाँटते रहते हैं। लेकिन मैं ऊपरी का मुकाबला करता था, इसके कारण मुझे लाभ नहीं हुआ। मुझे ऐसे लाभ की परवाह भी नहीं थी। लेकिन अन्डरहैन्ड को अच्छी तरह से संभाला था। जो कोई भी अन्डरहैन्ड हो उसकी हर तरह से रक्षा करना, यह मेरा सब से बड़ा गुण था।

प्रश्नकर्ता : आप क्षत्रिय है इसलिए?

दादाश्री : हाँ, क्षत्रिय, यह क्षत्रियों का गुण, इसलिए राह चलते किसी की लड़ाई हो रही हो तो जो हार गया, जिसने मार खाई हो उसके पक्ष में रहता था, यह भी हमारी क्षत्रियता।

बचपन का शरारती स्वभाव

हमें तो सब दिखाई देता है, इस तरफ देखें तो इधर का दिखाई देता है। इसलिए हम वे सारी बातें बता देते हैं। माफिक आए ऐसी चीज़ दिखाई देने पर बता देते हैं, वर्ना हम ऐसा कहाँ याद रखें? हमें अंत तक, बचपन तक का सब दिखाई देता है। सभी पर्याय दिखाई देते हैं। ऐसा था... ऐसा था... फिर ऐसा हुआ, स्कूल में हम घंटी बजने के बाद जाया करते थे, वे सारी बातें हमें दिखाई देती हैं। मास्टर जी मुझे कुछ कह नहीं पाते थे चिढ़ते रहते थे।

प्रश्नकर्ता : आप स्कूल में घंटी बजने के बाद क्यों जाते थे?

दादाश्री : ऐसा रौब! मन में ऐसा गरूर! उस दशा में सीधापन नहीं था तभी ऐसे टेढ़ापन करके देरी से जाते थे न! सीधा आदमी तो घंटी बजने से पहले जाकर अपनी जगह पर बैठ जाए।

प्रश्नकर्ता : रौब दिखाना वह उल्टा रास्ता कहलाता है?

दादाश्री : वह तो उल्टा रास्ता ही कहलाए न! घंटी बजने के

बाद हम जाएँ, जबकि मास्टर जी पहले आ चुके हों! यदि मास्टर जी देर से आएँ तो ठीक है, लेकिन बच्चों को तो घंटी बजने से पहले ही आना चाहिए न? लेकिन ऐसा टेढ़ापन। कहता था, 'मास्टर जी अपने आपको क्या समझते हैं?' लो! अरे! तुझे पढ़ाई करनी है या लड़ाई करनी है? तब कहें, 'नहीं, पहले लड़ाई करनी है'।

प्रश्नकर्ता : तो मास्टर जी आपसे कुछ नहीं कह पाते थे क्या?

दादाश्री : कह सकते थे, लेकिन कह नहीं पाते थे। उन्हें डर रहता था कि बाहर निकलकर पत्थर मारेगा तो सिर फोड़ देगा।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप इतने शरारती थे क्या?

दादाश्री : हाँ, शरारती थे। हमारा माल (प्राकृतिक स्वभाव) ही शरारती था! टेढ़ा माल!

प्रश्नकर्ता : ऐसा होते हुए भी 'ज्ञान' प्रकट हो गया यह तो आश्चर्य कहलाएगा न!

दादाश्री : 'ज्ञान' हो गया क्योंकि भीतर कोई मैल नहीं था न! ममता नहीं थी। इस अहंकार का ही हर्ज था लेकिन ममत्व ज़रा सा भी नहीं था, लालच नहीं था। इसलिए इस दशा की प्राप्ति हुई। लेकिन यदि कोई मेरा नाम लेता तो उसकी शामत आ जाती थी। इसलिए कुछ लोग पीछे से टिप्पणी किया करते थे कि इसका मिजाज़ बहुत है। तब कुछ ऐसा भी कहते थे, 'अरे, जाने दीजिए न, घमंडी है'। अर्थात् मेरे लिए कौन-कौन से विशेषणों का प्रयोग होता है इसकी मुझे जानकारी रहती थी। लेकिन मुझे ममता नहीं थी। यह प्रधान गुण था, उसी का प्रताप है यह! और यदि कोई ममत्व वाला सौ गुना सयाना रहा, तब भी संसार में गहराई तक डूबा हुआ होता है। हम ममता रहित थे इसलिए वास्तव में आनंद हो गया। यह ममता ही संसार है। अहंकार, वह संसार नहीं है।

बाद में मैंने भी अनुभव किया कि अब मैं सीधा हो गया हूँ। किसी को मुझे सीधा करने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आप सीधे कैसे हो गए?

दादाश्री : लोगों ने ऐसे-वैसे शिकंजे में कसकर मुझे सीधा कर दिया।

प्रश्नकर्ता : यह तो पिछले अवतारों में शुद्ध होता रहा था न?

दादाश्री : कितने ही अवतारों से सीधे होते आए हैं, तब कहीं जाकर इस अवतार में पूर्ण रूप से सीधा हो पाया।

भाषा सीखने के बजाय भगवान में रुचि

अंग्रेजी के मास्टर जी से मैंने कह दिया था। बड़े भाई उनके फ्रेन्ड थे। मैंने कहा कि आप जो कहना चाहें कह सकते हैं लेकिन मैं आपके यहाँ फँस गया हूँ। पंद्रह साल से पढ़ रहा हूँ लेकिन अब तक मैट्रिक नहीं हो पाया। गिनती से शुरू करके पंद्रह साल हो गए लेकिन मैट्रिक नहीं हो पाया। इन पंद्रह सालों में तो मैं भगवान खोज निकालता। इतने साल व्यर्थ में गँवाये! बिना वजह ए-बी-सी-डी सिखाते हैं। क्या अन्य किसी की भाषा, फॉरेन की भाषा सीखने के लिए मैट्रिक तक पढ़ना चाहिए? यह कैसा पागलपन है! विदेश की भाषा सीखने में यहाँ मनुष्य की आधी ज़िंदगी खत्म हो जाए!

लघुत्तम सीखते, मिलें भगवान

अनंत अवतारों से वही का वही पढ़ते हैं और फिर आवृत्त हो जाता है। अज्ञान पढ़ना नहीं पड़ता। अज्ञान तो साहजिक रूप से आ जाता है। ज्ञान पढ़ना पड़ता है। मेरे आवरण कम थे, इसलिए तेरहवें साल में ज्ञान हो गया था। बचपन में गुजराती स्कूल के मास्टर जी ने मुझसे कहा, 'आप यह लघुत्तम सीखिए'। तब मैंने पूछा, 'लघुत्तम यानी आप क्या कहना चाहते हैं? लघुत्तम कैसे निकालते है?' तब उन्होंने बताया, 'ये जो रकमें दी गईं हैं, उनमें से सब से छोटी रकम, जो अविभाज्य हो, जिसका फिर से भाग नहीं किया जा सके, ऐसी रकम खोज निकालनी है'। उस समय मैं छोटा था लेकिन लोगों को

कैसे संबोधित करता था? 'ये रकमें अच्छी नहीं हैं'। मनुष्य के लिए 'रकम' शब्द का प्रयोग करता था। इसलिए मुझे यह बात रास आई। अर्थात् मुझे ऐसा लगा कि इन 'रकमों' में भी ऐसा ही है न! अर्थात् भगवान सभी में अविभाज्य रूप से विद्यमान हैं। इसलिए मैंने इस पर से तुरंत ही भगवान खोज निकाले थे। ये सारे मनुष्य 'रकमें' ही हैं न! उनमें भगवान अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं।

आत्मा के सिवा और कुछ नहीं सीखा

बचपन में मैं साइकिल चलाता था, तब बावन रुपयों में रेले कंपनी की साइकिल मिलती थी। उस समय साइकिल पंचर होने पर सभी अपने-अपने घर पर रिपेयर करते थे। मैं तो उदार था इसलिए एक साइकिल वाले से जाकर कहा कि, 'भैया, इसका पंचर ठीक कर देना ज़रा'। तब सभी मुझसे कहने लगे कि, 'आप बाहर से रिपेयर क्यों करवाते हैं? इसमें करवाने जैसा क्या है?' मैंने उत्तर दिया कि, 'भैया! मैं यहाँ यह सब सीखने नहीं आया हूँ। इस दुनिया में बहुत चीज़ें हैं, उन सभी को सीखने के लिए मैंने जन्म नहीं लिया है। मैं तो आत्मा सीखने आया हूँ और यदि यह सब सीखने बैठूँगा तो आत्मा के बारे में उतना कच्चापन रह जाएगा'। इसलिए मैंने कुछ सीखा ही नहीं। साइकिल चलाना आता था लेकिन वह भी कैसा? सीधे-सीधे साइकिल सवार होना नहीं आता था, इसलिए पिछले पहिए से पैर घुमाकर सवार होता था! और कुछ आया नहीं और सीखने का प्रयत्न भी नहीं किया। यह तो, आवश्यकतानुसार सीख लिया था। और अधिक सीखने की ज़रूरत ही नहीं थी।

घड़ी हुई दुःखदायी

मेरा किसी ओर में ध्यान ही नहीं था। कुछ नया सीखने का प्रयत्न नहीं किया था। इसे सीखने बैठूँ तो उतनी उसमें (आत्मा सीखने में) कमी रह जाती न? इसलिए नया सीखना ही नहीं था।

बचपन में एक सेकन्ड हैन्ड घड़ी पंद्रह रुपए में लाया था। उसे

पहनकर सिरहाने हाथ रखकर सो गया। परिणाम स्वरूप फिर कान में दर्द होने लगा, इसलिए मैंने मन में सोचा कि यह तो दुःखदायी हो गई। इसलिए फिर कभी नहीं पहनी।

चाबी भरने में समय नहीं गँवाया

घड़ी की चाबी भरना मेरे लिए मुसीबत थी। हमारे साझेदार बोले कि यह सात दिन में एक बार चाबी लगाने वाली घड़ी है, इसे ले आएँ। इसलिए फिर सात दिन में एक बार चाबी लगाने वाली घड़ी ले आया। लेकिन एक दिन एक पहचान वाले आए, कहने लगे कि, 'घड़ी बड़ी सुंदर है'। तो मैंने कह दिया कि, ' आप ले जाइए, मुझे चाबी भरने में मुसीबत लगती है!' तब फिर हीरा बा डाँटने लगीं, आप तो जो जी में आए वह सब औरों को दे देते हैं, अब बिना घड़ी के मैं वक्त कैसे जानूँगी ? मैंने कभी भी घड़ी की चाबी घुमाई नहीं है! अभी मेरे भानजे पंद्रह साल से घड़ी की चाबी घुमा रहे हैं। मैं तो कभी केलेन्डर भी नहीं देखता! मुझे केलेन्डर देखकर करना भी क्या है ? कौन फाड़ेगा उसका पन्ना ? केलेन्डर का पन्ना भी मैंने फाड़ा नहीं है। इतनी फुरसत, इतना वक्त मेरे पास कहाँ है ? यदि घड़ी की चाबी घुमाने लगूँ तो मेरी चाबी कब घूमेगी ? अर्थात् मैंने किसी चीज़ के लिए समय बिगाड़ा ही नहीं है।

रेडियो को कहा पागलपन

एक मित्र ने कहा, 'रेडियो लाइए'। मैंने कहा, 'रेडियो ? और उसे मैं सुनूँगा ? फिर मेरे टाइम का क्या होगा ?' इन लोगों की बातें सुनने से उकता जाता हूँ, तो फिर यह रेडियो हमारे पास कैसे हो सकता है ? यह मेडनेस (पागलपन) है पूरी!

फोन का ख़लल भी नहीं रखा

मुझसे कहने लगे कि, 'हम फोन लगवाएँ'? मैंने कहा, 'नहीं, उस बला से कहाँ लिपटें फिर ? हम चैन की नींद सो रहे हों और घंटी बजने लगे, ऐसी झंझट क्यों मोल लें ? लोग तो शौक़ की खातिर

रखते है कि हमारी शान बढ़ेगी। इसलिए शान वाले लोगों के लिए ज़रूरी है। हम ठहरे मामूली आदमी, चैन की नींद सोने वाले, सारी रात निजी स्वतंत्रता से सोते हैं। यानी कि यह टेलीफोन कौन रखे? फिर घंटी बजी कि परेशानी शुरू! मैं तो दूसरे ही दिन उठाकर बाहर फैंक दूँगा। ज़रा सी घंटी बजी नहीं कि नींद में ख़लल हो जाएगा। मच्छर-खटमल ख़लल पहुँचाए वह तो अनिवार्य है लेकिन यह तो ऐच्छिक है, इसे कैसे बर्दाश्त करूँ?

पहले हम गाड़ी रखते थे। तब ड्राइवर आकर कहता, 'साहब, फलाँ पार्ट टूट गया है'। मुझे तो पार्ट का नाम भी नहीं आता था। फिर मुझे लगा कि यह तो निरा फँसाव है! फँसाव तो वाइफ के साथ हो गया और परिणाम स्वरूप बच्चे हुए। एक बाज़ार खड़ा करना हो तो कर सकते हैं लेकिन ऐसे फँसाने वाले दो-चार बाज़ारों की क्या आवश्यकता है? ऐसे कितने बाज़ार लेकर घूमते फिरें?

ये तो सारी कॉमनसेन्स की बातें कहलाती हैं। वह ड्राइवर गाड़ी में से पेट्रोल निकाल ले और आकर कहे, कि 'चाचा जी, पेट्रोल डलवाना है?' अब चाचा जी क्या जाने कि यह क्या बला है? इसलिए हम गाड़ी नहीं रखते थे। फिर संयोगवश ऐसा भी कहते हैं कि गाड़ी लाओ!

वहाँ सुख नहीं देखा

प्रश्नकर्ता : दादाजी, हमें सबकुछ चाहिए और आपको कुछ नहीं चाहिए इसकी वजह क्या है?

दादाश्री : यह तो आप, लोगों से सीखकर करते हैं। मैंने लोगों से नहीं सीखा। मैं पहले से ही लोगों से विरुद्ध चलने वाला आदमी। लोग जिस रास्ते पर चलते हों, यदि वह रास्ता गोलाकार में आगे से मुड़कर जाता हो, लोग उस रोड पर घूमकर जाते हैं। जबकि मैं हिसाब लगाता हूँ कि सीधे जाएँ तो एक मील होगा और घूमकर जाने पर तीन मील होंगे, यदि आधी गोलाई काट दें तो डेढ़ मील का फासला बाकी रहेगा, इस तरह मैं बीच में से सीधा निकल जाऊँगा। रास्ते का

हिसाब निकालकर सीधा निकल जाऊँगा इस तरह मैं लोक विरुद्ध चला। इनके कहे अनुसार कहीं चला जाता है क्या? लोकसंज्ञा नाम मात्र की भी नहीं थी। लोगों ने जिसमें सुख समझा, उसमें मुझे सुख नज़र ही नहीं आया।

रुचि, सिर्फ अच्छे वस्त्रों की ही

सिर्फ एक ही बात का शौक था कि कपड़े फर्स्ट क्लास पहनता था। उसे एक आदत कहें या फिर उतनी माया लाया था कि अच्छे कपड़े पहनने की आदत थी! अन्य कुछ भी नहीं। घर जैसा भी हो चला लूँगा।

प्रश्नकर्ता : बचपन से ही न?

दादाश्री : हाँ, बचपन से।

प्रश्नकर्ता : क्या स्कूल जाते समय भी अच्छे वस्त्र चाहिए?

दादाश्री : स्कूल जाते समय या और कहीं भी, हर जगह वस्त्र अच्छे से अच्छे चाहिए।

अर्थात् बस इतना ही... अकेले वस्त्रों में ही शक्ति का व्यय हुआ है। कपड़े सिलवाते समय दर्ज़ी से कहना पड़ता कि, 'देखना भैया, कॉलर ऐसा चाहिए, ऐसा होना चाहिए, वैसा होना चाहिए'। अन्य किसी चीज़ में शक्ति का व्यय नहीं हुआ। ब्याहने में भी शक्ति खर्च नहीं की थी।

अनुत्तीर्ण हुए लेकिन योजना अनुसार

मेरे पिता जी और बड़े भैया ने, दोनों ने मिलकर गुप्त मंत्रणा की थी कि, 'हमारे परिवार में एक सूबेदार हो गए हैं, इसलिए इसे भी मैट्रिक होने पर सूबेदार बनाएँगे'। यह गुप्त मंत्रणा मैंने सुन ली थी। उनकी सूबेदार बनाने की इच्छा थी। उनकी वह धारणा मिट्टी में मिल गई। मैंने मन ही मन सोचा कि ये लोग मुझे सूबेदार बनाना चाहते हैं, तो जो मेरा सर-सूबेदार होगा, वह मुझे डाँटेगा। इसलिए

मुझे सूबेदार नहीं बनना है। क्योंकि बड़ी मुश्किल से यह एक अवतार मिला है, यहाँ फिर डाँटने वाले आ मिलें! तो फिर यह जन्म किस काम का? हमें भोग-विलास की किसी चीज़ की तमन्ना नहीं है और वह आकर डाँट सुनाएँ यह कैसे बर्दाश्त किया जाए? जिन्हें भोग-विलास की चीज़ें चाहिए, वे भले ही डाँट सुना करें। मुझे तो ऐसा-वैसा कुछ भी नहीं चाहिए था। यानी मैंने ठान लिया कि पान की दुकान खोल लेंगे, लेकिन ऐसी डाँट सुनने से दूर रहेंगे। अतः मैंने तय किया था कि मैट्रिक में अनुत्तीर्ण ही होना है। इसलिए उस पर ध्यान ही नहीं देता था।

प्रश्नकर्ता : योजनाबद्ध?

दादाश्री : हाँ, योजनाबद्ध। इस तरह फेल हुआ वह भी योजनाबद्ध। यानी नॉन मैट्रिक। मैं ये साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स, द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ, देअर आर टू व्यू पोइन्ट्स... ऐसा सब बोलूँ न तो लोग सवाल करते कि 'दादाजी, आप कहाँ तक पढ़े हैं?' वे तो ऐसा ही समझते कि दादाजी तो ग्रेज्युएट से भी आगे पढ़े होंगे! मैंने कहा, 'भैया, इस बात को गुप्त ही रहने दीजिए, इसे खोलने में मज़ा नहीं आएगा'। जब वे आग्रह करने लगे कि, 'बताइए तो सही, पढ़ने में आप कहाँ तक पढ़े हैं?' तब मैंने बताया कि, 'मैट्रिक फेल'!

मैट्रिक फेल होने पर बड़े भैया कहने लगे, 'तुझे कुछ नहीं आता'। मैंने कहा, 'ब्रेन (दिमाग़) खत्म हो गया है'। तब उन्होंने पूछा, 'पहले तो बहुत बढ़िया आता था न?' मैंने कहा, 'जो भी हो लेकिन अब ब्रेन जवाब दे गया है'। तब कहने लगे, 'धंधा संभालेगा क्या?' मैंने कहा, 'धंधे में क्या करूँगा, आप जितना कहेंगे उतना करता जाऊँगा'। परिणाम स्वरूप डेढ़ साल धंधा करने के बाद बड़े भैया कहने लगे कि, 'तू तो फिर से अव्वल नंबर लाया!' धंधे में रुचि पैदा हो गई, पैसा कमाने को मिला।

यह तो सूबेदार होने वाला था उसके बजाय यह उल्टी राह पर

चल पड़ा। इसलिए भैया तंग आ गए और कहने लगे कि इसे धंधे में लगा दो। इससे मैंने समझा कि अब हमारी ग्रहदशा परिवर्तित हुई। शनि की जो दशा थी वह खत्म हो गई। धंधे में तो सब समझ आने लगा, फटाफट सब आ गया। और होटल में जाते, चाय-पानी पिलाते, सबकुछ चलता था और धंधा भी कान्ट्रैक्ट का, नंगा धंधा!

ब्याहते समय भी मूर्च्छा नहीं

ब्याहते समय नया साफ़ा बाँधा था, उस पर सेहरे का बोझ आने पर साफ़ा नीचे खिसक गया और उतरते-उतरते आँखों के ऊपर आ गया, घूमकर जब देखा तो हीरा बा (धर्मपत्नी) नज़र नहीं आईं। जो शादी करने आया हो वह साहजिक रूप से दुल्हन की ओर देखेगा ही न? वह साजो-सामान नहीं देखता! क्योंकि पहले कन्या दिखाने की परंपरा नहीं थी। इसलिए जब वह लग्नमंडप में आती, तभी देख पाते थे। तब मेरे मुहाने पर वह बड़ा सेहरा आ गया कि दिखाई देना बंद हो गया। तब मुझे तुरंत ही विचार आया कि 'यह ब्याह तो रहे हैं, लेकिन दो में से किसी एक को रँडापा तो आएगा ही (यानी किसी एक की मृत्यु होने पर दोनों एक-दूसरे से बिछड़ ही जाएँगे), दोनों को रँडापा नहीं आने वाला'। उस वक्त ऐसा विचार आया था मुझे वहाँ पर, यों ही छूकर चला गया। क्योंकि उनका चेहरा नज़र नहीं आया न! इसलिए यह विचार आया!

ओ...हो...हो...! 'उनको' 'गेस्ट' समझा

मैं उन्नीस साल का था, तब मेरे यहाँ बेटे का जन्म हुआ। इस खुशी में सारे फ्रेन्ड सर्कल (मित्रमंडल) को पेड़े खिलाए थे और जब बेटे का देहांत हो गया तब भी पेड़े खिलाए थे। तब सब कहने लगे कि, 'क्या दूसरा आया?' मैंने कहा, 'पहले पेड़े खाइए फिर बताऊँगा कि क्या हुआ'। हाँ, वर्ना शोक के मारे पेड़े नहीं खाते, इसलिए पहले खुलासा नहीं किया और पेड़े खिलाए। जब सभी ने खा लिए तब बताया कि, 'वह जो मेहमान आए थे न, वे चले गए!' तो कहने लगे कि, 'ऐसा कोई करता है क्या? और ये पेड़े खिलाए आपने हमें!'

हमें वमन करना पडे ऐसी हालत हो गई हमारी!' मैंने कहा, ''ऐसा कुछ करने जैसा नहीं है। वह मेहमान ही था, गेस्ट ही था। गेस्ट के आने पर कहते हैं 'आइए, पधारिए' और जाते समय 'पधारना' कहें, और क्या झंझट करनी गेस्ट के साथ?'' तब सब ने कहा कि, 'उसे गेस्ट कहते हैं? वह तो आपका बेटा था'। मैंने कहा कि, 'मेरे लिए तो वह गेस्ट ही है'। फिर बेटी के जन्म पर भी यही बात दोहराई। सब भूल गए और पेड़े खा लिए। बेटी के देहांत पर भी पेड़े खाए! हमारे लोग कुछ याद थोड़े ही रखते हैं? इन्हें भूलने में देर ही कितनी लगती है? लोगों को भूलने में देर नहीं लगती। देर लगती है क्या? मूर्छित अवस्था जो ठहरी! मूर्छित अवस्था यानी क्या, भूलने में देर ही नहीं लगती।

फिर भी मित्रों ने माना, 'सुपर ह्यूमन'

प्रश्नकर्ता : अब आपने यह जो सत्संग शुरू किया वह किस उम्र में? आपने सभी को पेड़े खिलाए उसे सत्संग कहें?

दादाश्री : नहीं, उसे सत्संग नहीं कहते। वह तो मेरा दर्शन है, एक तरह की सूझ है मेरी। सत्संग लगभग 1942 से शुरू हुआ। बयालीस से यानी आज उसे इकतालीस साल हुए (1983 में)। मूलतः सत्संग की शुरुआत बयालीस से हुई। आठ में मेरा जन्म, यानी मेरी चौंतीस साल की उम्र होगी। वैसे तो बतीस साल की उम्र से ही सत्संग शुरू हो चुका था, अर्थात् पहले लोगों को थोड़े-थोड़े वाक्य मिलते थे।

बाईस साल की उम्र में ही मैंने मित्रों से कह दिया था कि, भाईयों! आप लोग मेरा कोई कार्य कभी भी मत करना। अहंकार तो चोटी पर ही था, इसलिए कहा कि, 'आप अपना काम देर रात भी मुझसे करवा जाना'। तो मित्रों ने आपत्ति जताई कि, 'ऐसा क्यों कहते हैं? हमारा-तुम्हारा करने की क्या ज़रूरत है?'

ऐसा हुआ कि एक बार एक व्यक्ति के यहाँ मैं रात बारह बजे गया था, तब उस भाई के मन में आया कि कभी इतनी रात गए बारह

बजे तो आते नहीं और आज आए हैं, यानी कुछ पैसे-वैसे की ज़रुरत होगी ? अर्थात् उसने उल्टा भाव किया। आपको समझ में आता है न ? मुझे कुछ नहीं चाहिए था। उसकी दृष्टि में मुझे अंतर नज़र आया। प्रतिदिन की जो दृष्टि थी वही दृष्टि आज कुछ बिगड़ी हुई नज़र आई। ऐसा मेरी समझ में आने पर घर जाकर मैंने विश्लेषण किया। मुझे महसूस हुआ कि संसार में लोगों की दृष्टि बिगड़ते देर नहीं लगती। इसलिए हमारे साथ जो लोग रहते हैं, उन्हें एक ऐसी निर्भयता प्रदान करें कि फिर किसी भी हालत में उनकी दृष्टि में परिवर्तन नहीं आए। इसलिए मैंने कह दिया कि, 'आपमें से कोई भी मेरा कोई कार्य मत करना कभी। अर्थात् मेरा डर आपके मन में नहीं होना चाहिए कि यह कुछ लेने आए होंगे'। तब कहें, 'ऐसा क्यों ?' मैंने उत्तर दिया कि, 'मैं दो हाथ वालों के पास से कुछ माँगने के हक में नहीं हूँ। क्योंकि दो हाथ वाले खुद ही दुःखी हैं और वे सुख खोजते हैं। मैं उनसे कोई आशा नहीं रखता हूँ। लेकिन आप मुझसे आशा रखना क्योंकि आप तो खोजते हैं और आपको छूट है कि मुझसे आपका कार्य बिना झिझक करवा जाना, लेकिन मेरा कोई कार्य मत करना', ऐसा कह दिया। अतः उन्हें निर्भय बना दिया। तब उन लोगों ने कहा कि 'सुपर ह्युमन के सिवा कोई ऐसा बोल नहीं सकता!' अर्थात् उन्होंने कहा, कि यह सुपर ह्युमन का स्वभाव है, ह्युमन का नेचर नहीं!

निरंतर विचारशील दशा

1928 में मैं सिनेमा देखने गया था, वहाँ मन में मुझे यह प्रश्न उठा था कि 'अरे! इस सिनेमा से हमारे संस्कारों की क्या दशा होगी ? और इन लोगों की क्या हालत होगी ?' फिर दूसरा विचार आया कि, 'क्या इस विचार का कोई हल है हमारे पास ? हमारे पास कोई सत्ता है ? हमारे पास कोई सत्ता तो है नहीं, इसलिए यह विचार हमारे किसी काम का नहीं है। यदि सत्ता होती तो विचार काम में आता, जो विचार सत्ता से परे हो, उसके पीछे लगे रहना वह तो अहंकार है'। बाद में दूसरा विचार आया कि, 'क्या यही होने वाला है इस हिंदुस्तान का ?'

उन दिनों ज्ञान नहीं हुआ था, ज्ञान तो 1958 में हुआ। उससे पहले अज्ञान तो था ही न? अज्ञान थोड़े ही कोई ले गया था? ज्ञान नहीं था लेकिन अज्ञान तो था ही न! फिर भी उस समय अज्ञान में भी यह दिखाई दिया कि, 'जो इतनी जल्दी उल्टी बात प्रचार कर सकता है, वह सीधी बात का प्रचार भी उतनी ही जल्दी करेगा'। इसलिए सीधी बात के प्रचार हेतु ये साधन सर्वोत्तम हैं। यह सब उस समय सोचा था, लेकिन 1958 में ज्ञान प्रकट होने के पश्चात् उसके बारे में ज़रा सा भी विचार नहीं आया।

जीवन में नियम ही यही...

अर्थात् बचपन से मैंने यही सीखा था कि, 'भैया, तू मुझे आकर मिला और यदि तुझे कुछ सुख प्राप्त नहीं हुआ तो मेरा तुझसे मिलना बेकार है'। उन मिलने वालों से ऐसा मैं कहता था। वह चाहे कितना भी नालायक हो, यह मुझे नहीं देखना है लेकिन यदि मैं तुझे मिला और मेरी ओर से सुगंधि नहीं आई वह कैसे चला लें? यह धूपबत्ती नालायकों को सुगंधि नहीं देती क्या?

प्रश्नकर्ता : सभी को देती है।

दादाश्री : उसी प्रकार यदि मेरी सुगंधि तुम तक नहीं पहुँचती तो फिर मेरी सुगंधि ही नहीं कहलाएगी। अर्थात् कुछ लाभ होना ही चाहिए। ऐसा पहले से ही मेरा नियम रहा है।

हमें रात के समय बाहर से आना पड़े तो हमारे जूतों की आवाज़ से कुत्ता जाग नहीं जाए, इसलिए हम पैर दबाकर चलते थे। कुत्तों को भी नींद तो आती है न? उन बेचारों को कहाँ बिछौना नसीब में होता है? तब क्या उन्हें चैन की नींद भी न सोने दें?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, यह आपके पैरों में गोखरू कैसे हो गए हैं?

दादाश्री : यह तो हमने आत्मा प्राप्त करने हेतु तप किया था उसका परिणाम है। वह तप कैसा कि जूते में कील ऊपर आ जाए तो

उसे ठोकना नहीं, यों ही चलाते रहना। बाद में हमें मालूम पड़ा कि यह तो हम गलत राह चल रहे हैं। ऐसा तप हमने किया था। जूते में कील बाहर निकल आए और पैरों में चुभती रहे उस समय यदि आत्मा हिल जाए तो आत्म प्राप्ति नहीं हुई, ऐसी मेरी मान्यता थी। इसलिए वहाँ तप होने देते थे। लेकिन उस तप का दाग़ आज तक बना हुआ है! गया नहीं। तप का दाग़ सारी ज़िंदगी नहीं जाता। यह गलत रास्ता है, यह बात हमारी समझ में आ गई थी। तप तो भीतरी होना चाहिए।

प्राप्त तप भुगता, अदीठ रूप में

मुंबई से बड़ौदा कार में आना था, इसलिए बैठते ही कह दिया कि, 'सात घंटे एक ही जगह बैठना होगा, तप आया है'। हम आपके साथ बातें करते हैं, लेकिन भीतर में हम से हमारी बात चल रही होती है कि, 'आज आपको तप आया है इसलिए एक अक्षर भी मुँह से मत निकालना'। लोग तो आश्वासन लेने के लिए पूछते हैं कि, दादाजी आपको अनुकूलता है या नहीं? तब कहते, 'पूरी अनुकूलता है'। क्योंकि हम किसी को भी कमीशन नहीं देते, हम ही भुगत लेते हैं। एक अक्षर भी मुँह से निकालें, वे दादाजी नहीं। इसे कहते हैं, प्राप्त तप भुगतना।

प्रतीक्षा करने के बजाय उपयोग रखो

जब बाईस साल का था तब एक दिन एक जगह सिर्फ एक ही मिनट से बस चूक गया। हालोल रोड पर एक गाँव पड़ता है, वहाँ था और बस आकर निकल गई। वैसे तो मैं एक घंटा पहले ही वहाँ पर आ गया था लेकिन होटल से बाहर आने में एक मिनट की देरी हुई और बस निकल गई। अर्थात् वह विषाद की घड़ी कहलाए। अगर समय पर नहीं आते और बस निकल गई होती तो हम समझते कि चलो, 'लेट' हो गए। उस हालात में इतना विषाद नहीं होता। यह तो समय से पहले आए और बस नहीं पकड़ पाए! अब दूसरी बस डेढ़ घंटे के बाद ही मिलनी थी।

अब वहाँ डेढ़ घंटा जो प्रतीक्षा करनी पड़ी न, वहाँ मेरी क्या स्थिति हुई? यानी भीतर मशीन चलने लगी! अब ऐसे वक्त में कितनी झंझट पैदा होती है? मज़दूर को पचास झंझट होती है और मुझे लाख होती है! कहीं ज़रा सा भी चैन नहीं आता, न तो खड़े रहना अच्छा लगता है। कोई कहे कि 'आइए, बैठिए' और गद्दी हो तब भी नहीं सुहाता। अब डेढ़ घंटा तो बीस घंटे समान लगता है। इसलिए मैंने मन में कहा कि, सब से बड़ी मूर्खता यदि कोई है तो वह है प्रतीक्षा करना। किसी मनुष्य के लिए या किसी वस्तु के लिए प्रतीक्षा करना उसके समान फूलिशनेस (मूर्खता) और कोई नहीं इस दुनिया में! इसलिए तब से, बाईस साल की उम्र से प्रतीक्षा करना बंद कर दिया। और जब प्रतीक्षा करने का अवसर आ पड़े तब दूसरा ही काम सौंप दिया करता था, प्रतीक्षा तो करनी ही पड़ती है, और कोई चारा ही नहीं है न! लेकिन इसकी तुलना में हमने सोचा यह प्रतीक्षा करने का समय बड़ा सुंदर है। वर्ना खाली इधर-उधर झाँकते फिरें कि बस आई या नहीं आई! इसलिए ऐसे समय पर हमने दूसरी ही सेटिंग कर दी ताकि हमें भीतर शांति रहे। कोई सेटिंग हो सकती है या नहीं हो सकती?

प्रश्नकर्ता : हो सकती है।

दादाश्री : काम तो अनेकों होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मन को काम पर लगा दें?

दादाश्री : हाँ, मन को काम पर लगा देना।

प्रश्नकर्ता : किस काम में लगाएँ?

दादाश्री : किसी भी प्रकार की सेटिंग कर सकते हैं। यानी उन दिनों मैं क्या किया करता था? किसी संत या फिर कृपालुदेव (श्रीमद् राजचंद्र) का कुछ लिखा हुआ, वह मैं बोलता नहीं था, पढ़ता था। बोलने पर वह रटाई कहलाएगी। उसे मैं पढ़ता था। आपकी समझ में आती है यह बात?

प्रश्नकर्ता : उसे कैसे पढ़ते थे, दादाजी ? बिना पुस्तक के कैसे पढ़ते थे ?

दादाश्री : बिना पुस्तक के पढ़ता था। मुझे तो 'हे प्रभु' अक्षर लिखे हुए नज़र आते और मैं पढ़ता रहता। वर्ना मन तो रटेगा और फिर सारे संकल्प-विकल्प उठने लगें। और जब सिर्फ रटना ही होगा तो मन हो गया बेकार। 'हे प्रभु, हे प्रभु' बोलते रहे और मन बेकार बैठा फिर बाहर चला जाता है। इसलिए मैंने एडजस्टमेन्ट लिया था कि जैसा लिखा हो वैसा नज़र आता रहे। जैसे :-

'हे प्रभु, हे प्रभु, शुं करुं, दीनानाथ दयाल,
हुं तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाल।'
(हे प्रभु, हे प्रभु क्या करूँ, दीनानाथ दयाल,
मैं तो दोष अनंत का भाजन हूँ करुणाल!)

यह शब्द-शब्द, अक्षरशः मात्रा-बिंदी के साथ सब नज़र आते थे। कृपालुदेव ने एक और रास्ता बताया था कि उल्टे क्रम से पढ़ना। आखिर से लेकर शुरुआत तक आना। तब लोगों को इसकी प्रेक्टिस हो गई, आदत सी हो गई। मन का स्वभाव ही ऐसा है कि जिसमें लगाएँगे, उसकी आदत हो जाएगी, रट लेगा। और इस तरह पढ़ने में रटना नहीं होता, नज़र आना चाहिए। इसलिए यह हमारी सब से बड़ी खोज है, पढ़ने की। और फिर हम दूसरों को भी सिखाते हैं। इन सभी को सिखाया कि पढ़कर बोलना।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, बाईसवें साल में भी यह ताकत थी क्या ?

दादाश्री : हाँ, बाईसवें साल में यह ताकत थी।

उलझन में खिली अंतर सूझ

यानी मेरी उस उलझन के कारण यह ज्ञान उत्पन्न हुआ। डेढ़ घंटा यदि उलझता नहीं तो... ?

प्रश्नकर्ता : एक मिनट नहीं चूकते तो...

दादाश्री : वह एक मिनट चूके, उसके फलस्वरूप यह ज्ञान पैदा हुआ। यानी ठोकरें खा-खाकर यह ज्ञान उत्पन्न हुआ है, सूझ पैदा हुई है। जब ठोकर लगे तब सूझ पैदा हो जाती है और वह सूझ सदैव मुझे हेल्पिंग (सहायक) रही है। अर्थात् फिर मैंने कभी राह नहीं देखी किसी की। बाईसवें साल के पश्चात् मैंने किसी की राह नहीं देखी। यदि आज गाड़ी साढ़े तीन घंटे 'लेट' है तो हम फिजूल टाइम (समय) व्यतीत नहीं करेंगे। हम उपयोगपूर्वक रहेंगे।

ऐसे सेटिंग की काउन्टर पुलियों की

अब राह देखने से हुई ज़बरदस्त 'रेवोल्यूशन'!

इन मजदूरों को प्रति मिनट पचास 'रेवोल्यूशन' (मन की सोचने की गतिशक्ति) होते हैं, जबकि मेरे प्रति मिनट एक लाख रेवोल्यूशन होते हैं। अर्थात् मेरे और मज़दूरों के बीच में अंतर कितना? उनके पचास रेवोल्यूशन होने की वजह से जब आप उनसे कोई बात कहें तो उन्हें समझने में बहुत देर लगेगी। आप सादी सी बात, व्यवहार की सीधी सी बात बताएँगे तो वह भी उसकी समझ में नहीं आएगी। इसलिए फिर यदि उसे अलग तरीके से समझाएँगे तब उसके पल्ले पड़ेगी। अब मेरे रेवोल्यूशन अधिक होने की वजह से मेरी बात इन ऊँची कौम वालों की समझ में आने के लिए भी देर लगती थी। हमारे समझाने पर भी वे समझते नहीं थे। इसलिए मैं क्या कहता था कि, 'यह नालायक है, कमअक्ल है'। इसकी वजह से भीतर में पावर अधिक बढ़ जाता था। 'इतना समझाने पर भी नहीं समझता! कैसा मूर्ख आदमी है!' ऐसा कहकर उस पर गुस्सा करता रहता था। फिर मेरी समझ में आया कि इस रेवोल्यूशन की वजह से ऐसा हो रहा है, जिसके कारण उसके दिमाग़ में उतरता नहीं है। अब हम सामने वाले का कसूर बताएँ तो वह हमारा ही कसूर है। इसलिए फिर मैंने पुलियाँ लगाना शुरू कर दिया।

क्योंकि यदि पंद्रह सौ रेवोल्यूशन का पंप, तीन हज़ार वाले इंजन पर चलाएँगे तो पंप टूट जाएगा। इसके लिए फिर पुली लगानी पड़ेगी,

काउन्टर पुली। इंजन चाहे तीन हज़ार वाला हो और पंप भले ही पंद्रह सौ वाला हो लेकिन बीच में पुलियाँ लगानी चाहिए ताकि पंप तक पंद्रह सौ ही पहुँचे। काउन्टर पुली आपकी समझ में आती है? उसी प्रकार मैंने भी फिर लोगों से बात करते समय काउन्टर पुलियाँ लगाना शुरू कर दिया। फिर मुझे गुस्सा आना बंद हो गया। बात सामने वाले की समझ में कैसे आए, उस प्रकार काउन्टर पुली लगानी चाहिए।

3. अहंकार-मान विरुद्ध जागृति

निवास स्थान का किया चयन भी विचारपूर्वक

वणिक प्रकृति का थोड़ा सा माल क्षत्रिय में मिलाएँ और क्षत्रिय प्रकृति का थोड़ा सा माल वणिक में मिलाएँ और फिर जो मिक्स्चर तैयार होगा वह बहुत बढ़िया होगा। दहीं यदि खट्टा-मीठा हो तो श्रीखंड मज़ेदार बनेगा। इसलिए हमने पहले से ही क्या किया था? पहले तो हम पटेलों के मुहल्ले में रहते थे। हमारे बड़े भैया का व्यवहार पटेलों के साथ था लेकिन वह व्यवहार मुझे रास नहीं आता था। मैं छोटा था लेकिन पटेलों के साथ रहना मुझे रास नहीं आता था। क्यों रास नहीं आता था? क्योंकि यों उम्र तो सिर्फ बाईस की थी, लेकिन मुंबई सिर्फ घूमने हेतु जाया करता था और लौटते समय मुंबई का हलवा, जो किफायती दामों में मिलता था, वह ले आता था जिसे हमारी भाभी सभी पड़ोसियों में बाँटती थीं। ऐसे एक-दो बार ले गया था लेकिन एक बार ले जाना भूल गया। तब सारे पड़ोसी, जिनसे भाभी मिलती, वे कहते 'इस बार हलवा नहीं लाए क्या?' मुझे लगा कि, 'यह पीड़ा तो नहीं थी कहाँ से मोल ले ली?' पहले तो ऐसी पीड़ा नहीं थी। कोई 'नहीं लाए' कहकर अपमानित नहीं करता था। लेकर आए, वही हमारी भूल थी। एक बार लाए, दूसरी बार लाए और तीसरी बार नहीं लाए कि तमाशा हो गया। 'लीजिए, इस बार नहीं लाए?' अब हम तो बुरे फँसे! अर्थात् इन लोगों के साथ व्यवहार करना योग्य नहीं है।

बाकी, उन क्षत्रियों का व्यवहार कैसा होता है? वे कहेंगे, यदि ज़रूरत हो तो हमारा सिर काट लेना लेकिन आपका हमें देना पड़ेगा। सिर काटकर लेने-देने की ही तैयारियाँ। इनके सौदे कैसे? बड़े-बड़े! सट्टे का बहुत बड़ा बिज़नेस, सिर ही काटकर लेना और देना। इसलिए हमें यह सिर का लेन-देन रास नहीं आया। हमें किसी का सिर नहीं चाहिए और वह तो हमारा सिर माँगने आए। ऐसे सौदों में हमें पड़ना ही नहीं था, इसलिए तय किया कि वणिकों के साथ रहा जाए।

एक आदमी ने मुझसे पूछा था कि रावण का राज्य क्यों चला गया? तब मैंने उससे पूछा, 'क्यों चला गया? मुझे ज़रा समझाओ न!' तो उसने बताया कि, 'यदि रावण ने सेक्रेटरी-दीवान के तौर पर एक बनिया रखा होता तो उसे अपना राज्य नहीं गँवाना पड़ता!' मैंने पूछा, 'वह कैसे? तब उसने कहा कि, नारद ने जब सीता के बारे में बताया कि सीता बहुत ही रूपवती है, ऐसी है, वैसी है, उस समय रावण के मन में शूरवीरता आ गई कि किसी भी तरह सीता प्राप्त करनी है। उस समय यदि वणिक उसका दिवान होता तो समझाता कि 'साहब, ज़रा धैर्य धारण कीजिए न, मैंने सीता से भी बढ़कर एक दूसरी स्त्री देखी है'। यानी कि रावण को ऐन मौके पर दूर कर देता और एक बार मौका हाथ से निकल गया तो मानो सौ साल का फासला पड़ गया।' ऐसी बात उस आदमी ने मुझे बताई थी। मैंने सोचा कि बात तो सयानेपन की है। मौके का फायदा उठाने के लिए ऐसा कोई होना चाहिए! इसलिए इन वणिकों के साथ रहा। हमारे दोनों ओर पड़ोसी वणिक हैं, उनके साथ चालीस सालों से रह रहा हूँ।

हमने घर में कह दिया था कि हमारे यहाँ कोई कुछ लेने आए तो अवश्य देना, वापस लौटाए तो ले लेना, लेकिन माँगना तो कभी नहीं। एक बार देने के बाद दोबारा देना पड़े, तीसरी बार देना पड़े, ऐसे सौ बार भले ही देना पड़े लेकिन वापस लौटाने के लिए मत कहना। लौटाएँ तो ले लेना। इन वणिकों का व्यवहार इतना लाजवाब है कि उनके वहाँ एक बार बरफी भेजें और दूसरी बार यदि आधा या चौथाई टुकड़ा भेजेंगे तब भी कोई शिकवा नहीं और शिकायत

नहीं। और एकाध बार यदि नहीं भेजें तब भी कोई शिकायत नहीं। उनके साथ हमें रास आता है। हमें शिकवा-शिकायत करने वालों के साथ रास नहीं आता।

उसके बाद मैंने एक वणिक को मुनीम की नौकरी दी थी। एक भाई मुझसे कहने आए कि 'आपको वणिकों से बहुत लगाव है, तो इस वणिक को नौकरी पर रखेंगे क्या?' मैंने कहा, 'आ जाओ, कारखाने पर इतने सारे लोग काम कर रहे हैं और तू ठहरा वणिक, यह तो बेहतर होगा!' ऐसे सदैव अपने साथ वणिक को रखा करता था।

वह सब मान के खातिर ही

रोज़ाना चार-चार गाड़ियाँ घर के आगे खड़ी रहती थीं। 'मामा की पोल' (रिहायशी इलाका), संस्कारी मोहल्ला। आज से पैंतालीस साल पहले लोग बंगलों में कम ही रहते थे। बड़ौदा में 'मामा की पोल' सब से बढ़कर गिना जाता था। उन दिनों हम 'मामा की पोल' में रहा करते थे और किराया पंद्रह रुपए माहवार था। उन दिनों लोग सात रुपए वाले किराए के मकानों में पड़े रहते थे। वैसे तो बड़े कॉन्ट्रैक्टर कहलाते थे। अब वहाँ 'मामा की पोल' में वे बंगलों में रहने वाले मोटरें लेकर हमारे पास आया करते थे। क्योंकि वे मुसीबतों में फँसे हुए होते थे, इसलिए हमारे यहाँ आते। उल्टा-सीधा करके आते थे, तब भी उनको 'पिछले दरवाज़ें से' बाहर निकाल देता था (अपनी सूझ-बूझ से मुसीबत में से निकलने का रास्ता दिखाता था) । पिछला दरवाज़ा दिखाता था कि इस दरवाज़ें से निकल जाइए। अब गुनाह उसने किया हो और पिछले दरवाज़ें से मैं छुड़वा देता। अर्थात् गुनाह अपने सिर ले लेता था। किसलिए? मान की खातिर। 'पिछले दरवाज़ें से' भगा देना गुनाह नहीं क्या? ऐसे अक्ल लड़ाकर रास्ता दिखाया करता था, जिससे वे बच निकलते थे। इसलिए वे हमें सम्मान देते थे, लेकिन गुनाह हमारे सिर आता था। फिर समझ में आया कि अभानावस्था में ऐसे गुनाह होते हैं, मान की खातिर। फिर मान पकड़ में आया। मान की बड़ी चिंता रहती थी।

प्रश्नकर्ता : मान आपकी पकड़ में आया, फिर मान को मारा कैसे?

दादाश्री : मान मरता नहीं है। मान को इस तरह उपशम किया। वर्ना, मान मरता नहीं है। क्योंकि मारने वाला खुद हो तो फिर मारेगा किसे? खुद अपने को कैसे मारेगा? आपकी समझ में आया? इसलिए उपशम किया और जैसे-तैसे करके दिन गुज़ारे।

वह अहंकार काटता रहता था दिन-रात

हमारी बुद्धि ज़रा ज़्यादा ही उछल-कूद किया करती थी और अहंकार की उछल-कूद भी अधिक थी। मेरे बड़े भैया बहुत अहंकारी थे, वैसे पर्सनालिटी वाले आदमी थे। उनको देखते ही सौ आदमी तो इधर-उधर हो जाते। सिर्फ आँखों की पर्सनालिटी ही ऐसी थी। आँखों का और चेहरे का प्रभाव ही ऐसा था! मैं देखते ही कहता, 'मुझे तो उनसे डर लगता है'। फिर भी वे मुझे क्या कहते थे कि 'मैंने तेरे जैसा अहंकारी और कोई नहीं देखा!' अरे, मैं तो आपसे भड़कता हूँ। फिर भी अकेले में कहा करते कि, मैंने तेरे जैसा अहंकार और कहीं नहीं देखा! और वास्तव में वह अहंकार बाद में मेरी दृष्टि में आया। वह अहंकार जब मुझे काटता था तब मालूम हुआ कि बड़े भैया जो बताते थे, वह यही अहंकार है सारा! 'मुझे और कुछ नहीं चाहिए था' यानी लोभ नाम मात्र को नहीं ऐसा अहंकार! एक बाल बराबर भी लोभ नहीं। अत: अब वह मान कैसा होगा? यदि मान और लोभ विभाजित हुए होते तो मान थोड़ा कम हुआ ही होता...

मन से माना हुआ मान

मन में तो ऐसा गुमान कि जैसे इस दुनिया में सिर्फ मैं ही हूँ, दूसरा कोई है ही नहीं। देखिए, खुद को ना जाने क्या समझ बैठे थे! मिल्कियत में कुछ भी नहीं। दस बीघा ज़मीन और एक मकान, उसके अलावा और कुछ नहीं था। लेकिन मन में रौब कैसा? मानो चरोतर के राजा हों! क्योंकि आसपास के छ: गाँवों के लोगों ने हमें बहकाया

था। दहेजिया दुल्हा, जितना माँगे उतना दहेज मिले तब दुल्हा ब्याहने पर राज़ी होता। दिमाग़ में उसकी खुमारी रहती थी। कुछ पूर्वभव की कमाई करके लाया था, इसलिए ऐसी खुमारी थी!

लेकिन मेरे बड़े भैया तो ज़बरदस्त खुमारी में रहते थे। अपने बड़े भैया को मैं 'मानी' कहा करता था। लेकिन तब वे मुझे मानी कहते थे। एक दिन मुझे कहने लगे, 'तेरे जैसा मानी मैंने नहीं देखा!' मैंने पूछा, 'कहाँ पर आपको मेरा मान नज़र आया?' तब कहने लगे, 'हर बात को लेकर तेरा मान होता है'।

और उसके बाद खोजने पर प्रत्येक बात में मुझे मेरा मान दिखाई दिया और वही मुझे काटता था। मान कैसे पैदा हो गया था? कि सब लोग, 'अंबालाल भाई! अंबालाल भाई!' कहा करते थे, अंबालाल तो कोई कहता ही नहीं था न! छः अक्षर से पुकारें, उसकी आदत सी हो गई थी। उसके 'हेबिचूएटेड' हो गए थे। अब मान जब इतना भारी होगा तो उसकी रक्षा भी करनी पड़ेगी न! इसलिए फिर यदि कोई भूल से जल्दी में 'अंबालाल भाई' नहीं बोल पाए और 'अंबालाल' कहकर पुकारे तो उसमें थोड़े ही उसका गुनाह है? छः अक्षर एक साथ जल्दी में कैसे बोल सकता है कोई?

प्रश्नकर्ता : क्या आप ऐसी आशा रखते थे?

दादाश्री : अरे, मेरा तो फिर मोल-तौल शुरू हो जाता कि 'इसने मुझे अंबालाल कहा? अपने आपको क्या समझता है? क्या, उससे 'अंबालाल भाई' नहीं बोला जाता?' गाँव में दस-बारह बीघा ज़मीन हो और कुछ रौब जमाने जैसा नहीं लेकिन मन में तो न जाने अपने आपको क्या समझ बैठे थे? 'हम छः गाँव वाले, पटेल, दहेज वाले!'

अब यदि सामने वाला 'अंबालाल भाई' नहीं कहता, तब मेरी सारी रात नींद हराम हो जाती, व्याकुलता रहती। लीजिए! उससे क्या प्राप्ति होने वाली थी? उससे मुँह कुछ थोड़े ही मीठा होता है? मनुष्य

को कैसा स्वार्थ रहता है? ऐसा स्वार्थ जिसमें कुछ स्वाद भी नहीं आता हो। फिर भी मान लिया था, वह भी लोकसंज्ञा की मान्यता! लोगों ने बड़ा बनाया और लोगों ने बड़प्पन की मान्यता भी दी! लेकिन ऐसा लोगों का माना हुआ किस काम का?

ये गाय-भैंसें हमारी ओर दृष्टि करें और सभी गायें हमें देखती रह जाएँ और फिर कान हिलाए तो क्या हम ऐसा समझें कि वे हमारा सम्मान करती हैं, ऐसे? ये सब उसके समान हैं। हम अपने मन से मान लें कि ये सब लोग सम्मान से देख रहें है, मन की मान्यता! वे तो सारे अपने-अपने दुःख में डूब हुए हैं बेचारे, अपनी-अपनी चिंता में हैं। वे क्या आपके लिए बैठे हैं, बिना किसी काम के? सभी अपनी-अपनी चिंताएँ लिए घूम रहे हैं!

पसंदीदा अहंकार दुःखदायी हुआ

उस समय आसपास के लोग क्या कहते थे? बहुत सुखी व्यक्ति है! कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय, पैसे आते-जाते हैं। लोगों से बहुत प्रेम। लोगों ने भी प्रेमदृष्टि कबूल की, कि भगवान जैसे व्यक्ति है, बहुत सुखी व्यक्ति है! लोग कहते सुखी व्यक्ति है और मैं अपार चिंता किया करता था। और फिर एक दिन चिंता मिटती ही नहीं थी, नींद ही नहीं आती थी। फिर उठकर बैठ गया और चिंता की पुड़िया बनाई। ऐसे लपेटा, वैसे लपेटा और ऊपर मंत्रो से विधि की और फिर दो तकियों के बीच रखकर सो गया, तब बराबर नींद आ गई। और फिर सुबह उठकर उस पुड़िया को विश्वामित्री नदी में बहा दिया। फिर चिंता कम हो गई। लेकिन जब 'ज्ञान' हुआ तब सारे संसार को देखा और जाना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन 'ज्ञान' से पहले भी यह जागृति तो थी न, कि यह अहंकार है?

दादाश्री : हाँ, यह जागृति तो थी। अहंकार है यह भी मालूम था, लेकिन वह पसंद था। फिर उसने जब बहुत काटा तब पता चला

कि यह हमारा मित्र नहीं हो सकता, यह तो हमारा दुश्मन है, इसमें कोई मज़ा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार कब से दुश्मन लगने लगा?

दादाश्री : रात को नींद नहीं आने देता था, इसलिए समझ गया कि यह किस प्रकार का अहंकार है। इसलिए तो एक रात पुड़िया बनाकर सुबह जाकर उसे विश्वामित्री में बहा आया! और क्या करता?

प्रश्नकर्ता : यानी पुड़िया में क्या रखा?

दादाश्री : इतना अहंकार! जाने दो न! किसकी खातिर यह सब? बिना वजह के, न कुछ लेना, न देना! लोग कहते कि 'अपार सुखिया है' और मुझे तो कहीं सुख का छींटा भी नज़र नहीं आता था, भीतर अहंकार की अपार चिंता-परेशानियाँ होती रहती थीं।

वह अहंकार कब छूटा?

प्रश्नकर्ता : इस अहंकार को छोड़ने का मन कब हुआ? वह पागल अहंकार आपने कब छोड़ा?

दादाश्री : यह छोड़ने से नहीं छूटता, अहंकार छूटता है कहीं? तो सूरत के स्टेशन पर यह ज्ञान प्रकट हो गया और वह अपने आप छूट गया। बाकी, छोड़ने से छूटता नहीं है। छोड़ने वाला कौन? अहंकार के राज्य में छोड़ने वाला कौन? जहाँ राजा ही अहंकार हो, उसे छोड़ेगा कौन?

उस दिन से 'मैं' अलग ही स्वरूप में

प्रश्नकर्ता : आपको जो ज्ञान प्राप्त हुआ उस प्रसंग का थोड़ा सा वर्णन कीजिए न! उस समय आपके मनोभाव क्या थे?

दादाश्री : मेरे मनोभाव में किसी प्रकार का कोई विशेषभाव नहीं था। ताप्ति रेलवे लाइन पर सोनगढ़-व्यारा नामक जगह है वहाँ मेरा बिज़नेस था, वहाँ से मैं लौटकर सूरत स्टेशन पर आया था। तब

एक भाई हमेशा मेरे साथ रहा करते थे। उन दिनों मैं सूर्यनारायण के अस्त होने से पहले भोजन किया करता था, इसलिए ट्रेन में ही भोजन कर लिया था और सूरत स्टेशन पर छः बजे ट्रेन से उतरे थे। उस समय साथ वाले भाई, भोजन के जूठे बर्तन धोने के लिए गए थे और मैं रेलवे की बेन्च पर अकेला बैठा था। उस समय मुझे यह 'ज्ञान' उत्पन्न हो गया कि जगत् क्या है और कैसे चल रहा है, कौन चला रहा है और यह सब कैसे चल रहा है, वह सारा हिसाब नज़र में आ गया। उस दिन से मेरा इगोइज़म (अहंकार) आदि सब खत्म हो गया। फिर मैं अलग ही स्वरूप में रहने लगा, विदाउट इगोइज़म और विदाउट ममता (बिना अहंकार और बिना ममता के)! पटेल उसी तरह, पहले की तरह ही थे, लेकिन 'मैं' अलग स्वरूप हो गया था! तब से निरंतर समाधि के सिवाय, एक सेकन्ड के लिए भी, और कुछ रहा ही नहीं।

सूरत स्टेशन पर क्या नज़र आया?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, जब आपको सूरत स्टेशन पर ज्ञान हुआ, तब कैसा अनुभव हुआ था?

दादाश्री : सारा ब्रह्मांड नज़र आया! यह जगत् कैसे चल रहा है, कौन चलाता है, सब नज़र आया। ईश्वर क्या है, मैं कौन हूँ, यह कौन है, यह सब किस आधार पर चल रहा है, सब नज़र आया। समझ में आ गया और परमानंद हो गया। फिर सारे रहस्य खुल गए! शास्त्रों में पूर्ण रूप से लिखा नहीं होता। शास्त्रों में तो जहाँ तक शब्द पहुँचते हैं वहाँ तक का लिखा होता है और जगत् तो शब्दों से बहुत आगे है।

भीड़ में एकांत और प्रकट हुए भगवान

प्रश्नकर्ता : सूरत स्टेशन पर जो अनुभूति हुई, और जो एकदम डायरेक्ट प्रकाश हुआ, वह अनायास ही हुआ क्या?

दादाश्री : हाँ, अनायास ही, अपने आप ही उत्पन्न हो गया। सूरत के स्टेशन पर एक बेन्च पर बैठा था, बहुत भीड़ थी, लेकिन यह अनायास ही उत्पन्न हो गया!

प्रश्नकर्ता : तत्पश्चात् ?

दादाश्री : फिर सब पूर्ण रूप से ही दिखाई दिया, तत्पश्चात् परिवर्तन ही हो गया!

प्रश्नकर्ता : उस समय दुनिया के सारे लोग तो वहीं के वहीं ही होंगे न?

दादाश्री : हाँ, फिर तो मनुष्यों के पैकिंग दिखाई देने लगे और पैकिंग के भीतर का माल भी दिखाई देने लगा। वराइअटीज़ ऑफ पैकिंग (तरह-तरह के पैकिंग) और माल (आत्मा) एक ही तरह का! अर्थात् उसी क्षण सारा संसार ही भिन्न दिखाई दिया वहाँ पर।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान के पश्चात् व्यवहार का कार्य होता था क्या?

दादाश्री : बेहतरीन होता था। पहले तो अहंकार व्यवहार को कलुषित करता था।

प्रश्नकर्ता : पद में जो 'भीड़ में एकांत और कोलाहल में शुक्ल ध्यान' लिखा है उसका यदि थोड़ा विवरण किया जाए तो?

दादाश्री : 'भीड़ में एकांत' यानी क्या है कि मनुष्य एकांत में एकांत रूप से नहीं रह सकता है, क्योंकि उसका मन है न! इसलिए जहाँ भीड़ हो उसमें एकांत! फिर 'कोलाहल में शुक्ल ध्यान' उत्पन्न हुआ। इर्द-गिर्द इतना कोलाहल कि क्या कहें? लोगों की भीड़ थी और मैं अपने शुक्ल ध्यान में था। अर्थात् सारा संसार पूरा का पूरा मुझे ज्ञान में दिखाई दिया। जैसा है वैसा नज़र आया।

प्रश्नकर्ता : ऐसी अवस्था कितनी देर के लिए रही?

दादाश्री : एक ही घंटा! एक घंटे में तो सब एक्ज़ेक्ट ही हो गया। फिर तो बहुत बड़ा परिवर्तन नज़र आया। अहंकार तो मूल से ही गायब हो गया। क्रोध-मान-माया-लोभ सारी कमज़ोरियाँ चली गईं। मैंने ऐसी तो आशा भी नहीं की थी।

लोग मुझसे सवाल करते हैं कि 'आपको ज्ञान कैसे हुआ?' मैंने पूछा, 'आप नक़ल करना चाहते हैं तो इसकी नक़ल हो सके ऐसा नहीं है। दिस इज़ बट नैचुरल (यह सहज प्राकृतिक है)! यदि नक़ल करने योग्य होता तो मैं ही बता देता कि भैया, मैं इस राह गया, इधर गया, उधर गया, इस तरह मुझे यह प्राप्त हुआ। और मैं जिस राह गया था न, उस राह पर इतना बड़ा पुरस्कार मिलना संभव ही नहीं था। मैं तो कुछ साधारण फाइव परसेन्ट (पाँच प्रतिशत) की आशा करता था कि यदि हमारी मेहनत फले तो इसमें से हमें एकाध प्रतिशत मिल जाए।'

दिनांक से नहीं सरोकार

प्रश्नकर्ता : दादाजी, आपको ज्ञान हुआ उस दिन तारीख कौन सी थी?

दादाश्री : वह साल तो अट्ठावन (1958) का था। लेकिन तारीख तो, हमें क्या मालूम था कि उसको नोट करने की भी नौबत आएगी! और कभी कोई नोट माँगेगा यह भी मालूम नहीं था न! मैंने तो यह जाना कि अब हमारा हल निकल आया।

प्रश्नकर्ता : उस पर उपयोग देकर खोजना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, नहीं, वह तो यदि तारीख मिलनी होगी तो अपने आप मिल जाएगी। इस समय हम क्यों झंझट में पड़ें?

प्रश्नकर्ता : उस समय बारिश का मौसम था क्या?

दादाश्री : नहीं, वह बारिश और गरमी के बीच का मौसम था।

प्रश्नकर्ता : जुलाई का महीना था क्या?

दादाश्री : वह जुलाई नहीं, जून था। हमें उससे कोई सरोकार ही नहीं था, हमें तो उजियारा हुआ उससे सरोकार था।

प्रश्नकर्ता : बाद में लोग जानने को बेताब तो होंगे न?

दादाश्री : बेताब होंगे तब सामने आ भी सकता है! ज़रूरत होगी तब निकल आएगा।

ऐसे करना प्रतिक्रमण

अरे, उस समय अज्ञान-अवस्था में हमारा अहंकार भारी था! फलाँ ऐसे, फलाँ वैसे, निरा तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार... और कभी किसी को सराहते भी सही! एक ओर इसकी सराहना करते और दूसरी ओर उसका तिरस्कार करते। और जब 1958 में ज्ञान प्रकट हुआ तब से ए.एम.पटेल को कह दिया कि जिस-जिसके तिरस्कार किए हैं, उन व्यक्तियों को खोज-खोजकर, उन तिरस्कारों को साबुन से धो दीजिए। इसलिए एक-एक को खोजकर सभी बारी-बारी से धोते रहे। इस ओर के पड़ोसी, उस ओर के पड़ोसी, सारे परिवार वाले, चाचा, मामा सब के साथ तिरस्कार हुआ होता है, बिना वजह! उन सभी को धो दिया।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् मन से प्रतिक्रमण किया, रूबरू जाकर नहीं?

दादाश्री : मैंने ए.एम.पटेल से कहा कि आपके किए हुए सारे गलत काम मुझे नज़र आते हैं। अब तो इन सभी गलतियों को धो दीजिए। इसलिए उन्होंने क्या करना शुरू किया? कैसे धोया? मैंने तब उनको समझाया कि याद कीजिए। चंदूभाई को गालियाँ सुनाई हैं, सारी ज़िंदगी भला-बुरा कहा है, तिरस्कृत किया है, यह सब वर्णन करके कहना, 'हे चंदूभाई, मन-वचन-काया का योग, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से भिन्न, प्रकट शुद्धात्मा भगवान! चंदूभाई में स्थित शुद्धात्मा भगवान! मैं बार-बार चंदूभाई से माफी माँगता हूँ, दादा भगवान को साक्षी रखकर माफी माँगता हूँ और फिर से ऐसे दोष नहीं करूँगा'। यदि आप ऐसा करेंगे तभी आप सामने वाले के चेहरे पर परिवर्तन देख सकते हैं। उसका चेहरा बदला हुआ नज़र आएगा। आप यहाँ प्रतिक्रमण करें और वहाँ परिवर्तन होता रहे।

इस ज्ञान प्राकट्य के पश्चात्

सारे सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्सिस, संयोग आ मिले और सूरत स्टेशन पर काल आ मिला। उस काल को लेकर यह ज्ञान

प्रकट हो गया, कि जगत् किस आधार पर चल रहा है, कैसे चल रहा है यह सब, सारा विज्ञान दिखाई दिया, बाहर की आँख से नहीं, अंदर की आँख से। बस उसी क्षण से सारा अहंकार चला गया। 'मैं देह हूँ' वह सब उड़ गया। पूर्णतया ज्ञान दशा है तभी से।

अब ज्ञान दशा में रहता था, वहाँ बड़ौदा में! पहले वाले कर्मों की वजह से सारे फ्रेन्ड सर्कल का आना-जाना होता रहता था। पहले की तरह लोगों से, 'आप कैसे हैं? क्या हुआ? क्या नहीं', यह सब होता रहता था, लेकिन जो पहले ममता थी न, वह नहीं रही। पहले मान के पोषण हेतु मैं बोलता था। क्योंकि किसी का कोई कार्य मैंने मुफ्त में नहीं किया है, उसके बदले में मेरा मान का पोषण होता रहा है, इतना ही। अर्थात् बिना कारण तो कोई कार्य होता ही नहीं है। लेकिन अब वही कार्य मान की अपेक्षा के बगैर होने लगा।

ज्ञान प्रकट होने के पश्चात् चार साल गुज़र गए। तब तक किसी को मालूम ही नहीं था कि इनको कुछ प्राप्ति हुई है। फिर भीड़ होने लगी (लोग ज्ञानप्राप्ति के लिए आने लगे)।

4. साझेदारी में व्यवसाय करते...

नौकरी में मिले जितना, उतना ही घर खर्च के लिए

हमने बचपन में तय किया था कि जहाँ तक हो सके झूठ की लक्ष्मी घर में घुसने नहीं देनी है और यदि संयोगाधीन घुस जाए तो वह धंधे में ही रहने देनी, घर में घुसने नहीं देनी है। इसलिए आज हमें छियासठ साल हो गए लेकिन झूठ की लक्ष्मी को घर में घुसने नहीं दिया और घर में कभी भी क्लेश पैदा नहीं हुआ। घर में तय किया था कि इतने पैसों से घर चलाना है। धंधे में लाखों की कमाई होती है, लेकिन यदि यह ए.एम.पटेल सर्विस (नौकरी) करने जाए तो उसे कितना वेतन मिलेगा? ज़्यादा से ज़्यादा छः सौ-सात सौ रुपए मिलेंगे। धंधा, वह तो पुण्य का खेल है। इसलिए नौकरी में जितना मिले, उतने पैसों से ही घर का खर्च चलाया जाए, शेष धंधे में ही

रहने देना चाहिए। इन्कम टैक्स वालों का खत आए, तो हमें कहना है कि 'यह रकम है उसे भर दीजिए'। कौन सा 'अटैक' कब होगा उसका कोई ठिकाना नहीं है। यदि उन पैसों को खर्च कर दिया और इन्कम टैक्स वालों का 'अटैक' होगा तो साथ-साथ यहाँ दूसरा 'अटैक' (हार्ट का) भी आएगा! हर जगह 'अटैक' होने लगे हैं न? इसे जीवन कैसे कहें? आपको क्या लगता है? भूल होती है ऐसा लगता है या नहीं? हमें उस भूल को मिटाना है।

लक्ष्मी की न कमी, न भराव

मुझे कभी लक्ष्मी की कमी नहीं हुई और भराव भी नहीं हुआ। लाख रुपए आने से पहले कहीं न कहीं से बम आ गिरेगा (कुछ ऐसा हो जाए) और खर्च हो जाएँगे। यानी भराव तो होता ही नहीं है और कभी कमी भी नहीं होती है, और कुछ दबाकर भी नहीं रखा। क्योंकि यदि हमारे पास झूठ का पैसा आए तब वह दबाना पड़ेगा न? ऐसा गलत धन आता ही नहीं तो दबाएँ कैसे? और ऐसा हमें चाहिए भी नहीं। हमें तो कमी नहीं हो और भराव भी नहीं हो तो बहुत हो गया।

उगाही करें तो परेशानी आए न?

यह सन् बयालीस की बात है, उन दिनों फ्रेन्ड सर्कल में रुपयों का लेन-देन चलता था। उन रुपयों को फिर वापस लौटाने कोई नहीं आया। पहले तो किसी को रुपए देने पर कोई दो सौ-पाँच सौ नहीं लौटाता था तब तक तो ठीक था। मेरे पास था इसलिए मैं सभी दोस्तों को हेल्प (मदद) करता था, लेकिन बाद में जब एक भी लौटाने नहीं आया तब मेरे अंदर से आवाज़ आई कि, 'अच्छा हुआ, यदि रुपयों की उगाही करेंगे तो वे फिर से उधार माँगने आएँगे'। उगाही करने पर वे थोड़े-थोड़े करके पाँच हज़ार लौटाएँगे ज़रूर, लेकिन फिर से दस हज़ार और माँगने आएँगे। इसलिए यदि माँगने वाले को बंद करना हो तो यही रास्ता उत्तम है। हम इतने से ही रोक लगा दें, ताला लगा दें। उगाही करेंगे तो वे फिर से आएँगे न! और उन लोगों ने हमारे

लिए क्या निष्कर्ष निकाला कि, 'उगाही ही नहीं करते, चलिए हमारा काम बन गया'। इसलिए फिर वे दोबारा आए ही नहीं और मुझे भी यही चाहिए था। यानी कि 'भला हुआ, मिटा जंजाल, सुख से भजेंगे श्री गोपाल' अर्थात् उस समय यह कला प्रकट हुई!

हमारा एक पहचान वाला रुपए उधार ले गया था। फिर लौटाने ही नहीं आया। तब हमारी समझ में आ गया कि यह बैर से बंधा होगा, इसलिए भले ही ले गया। ऊपर से उससे कह दिया कि, 'तू अब हमें रुपए लौटाने मत आना, तुझे छूट देते हैं'। इस तरह यदि पैसे गँवाने पड़ें तो गँवाकर भी बैर से मुक्ति पाइए।

उधार दिया था उसे ही दोबारा दिया! कैसे फँसे?

ऐसा है न, कि संसार में लेन-देन तो चलता ही रहता है। कभी किसी से लिए होते हैं, कभी किसी को देने पड़ते हैं, अगर कभी किसी आदमी को कुछ रुपए उधार दे दिए और उसने नहीं लौटाए, तो इसके कारण मन में क्लेश तो होगा ही न? इच्छा होती रहेगी कि, 'वह कब लौटाएगा? कब वापस करेगा?' इसका कोई अंत है क्या?

हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ था न! पैसे वापस नहीं आने पर उसकी चिंता तो हम पहले से ही नहीं किया करते थे। यों साधारण रूप से टकोरते, उसे कहते ज़रूर थे। हमने एक आदमी को पाँच सौ रुपए उधार दिए थे। देने पर बहीखाते में दर्ज नहीं किया और न ही किसी कागज़ पर दस्तख़त करवाए थे! इस बात को साल-डेढ़ साल हो गया होगा। मुझे भी कभी याद नहीं आया था। एक दिन वह आदमी मुझे रास्ते में मिल गया, मुझे याद आने पर मैंने उससे कहा कि, 'यदि अब हालात ठीक रहते हों तो मेरे पाँच सौ रुपए जो आपने उधार लिए थे, उसे लौटा दीजिए'। तब उसने कहा कि 'पाँच सौ किस चीज़ के?' मैंने याद दिलाया कि, 'आप जो मुझसे उधार ले गए थे न वे'। यह सुनते ही वह कहने लगा कि, 'आपने मुझे कब दिए थे? रुपए तो मैंने आपको उधार दिए थे, क्या आप यह भूल गए हैं?' तो मुझे कोई हैरानी नहीं हुई। कुछ समय रुककर, मैंने कहा

कि, 'अच्छा! मुझे ज़रा सोचने दीजिए'। थोड़ी देर सोचने का दिखावा करके मैंने कहा कि, 'हाँ, याद आया! सही है! ऐसा कीजिए! आप कल आकर ले जाइए'। फिर दूसरे दिन उसे रुपए दे दिए। वह आदमी यहाँ आकर हम से उलझने लगा कि आप मेरे रुपए क्यों नहीं लौटाते तो क्या करेंगे हम? ऐसी कई घटनाओं के उदाहरण हैं।

इसलिए ऐसे संसार को कैसे पार कर सकते हैं? हमने किसी को यदि रुपए उधार दिए हों तो उन्हें काले कपड़े में बाँधकर दरिया में डाल देने के बाद वापस मिलने की आशा करने के बराबर है। यदि वापस आ जाएँ तो जमा कर लेना और देने वाले को चाय-पानी पिलाकर कहना कि, 'भाई जी, आपका अहसान मानता हूँ कि आपने रुपया लौटाया वर्ना ऐसे काल में कोई भी नहीं लौटाता। आपने लौटाया यह आश्चर्य है'। यदि वह कहे कि, 'व्याज नहीं मिलेगा'। तब कहना, 'मूल धन आया इतना ही काफी है'। समझ में आता है? ऐसा संसार है। जिसने उधार लिया है उसे लौटाने में कष्ट होता है और उधार देने वाले को वापस न आने का दु:ख है। अब इनमें से सुखी कौन? और है व्यवस्थित (सायन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स)। नहीं लौटाता, वह भी व्यवस्थित है और मुझे डबल देने पड़े, वह भी व्यवस्थित है।

प्रश्नकर्ता : आपने फिर से पाँच सौ क्यों दिए?

दादाश्री : दोबारा किसी अवतार में उस आदमी के साथ पाला नहीं पड़े इसलिए। इतनी जागृति रहे न, कि यह तो गलत जगह पर आ गए।

ठगे गए, लेकिन कषाय न करने हेतु

हमारे साझेदार ने एक बार हम से कहा कि, 'लोग आपके भोलेपन का लाभ उठाते हैं'। मैंने कहा, 'आप मुझे भोला समझते हैं लेकिन आप ही भोले हैं, मैं तो जान-बूझकर ठगा जाता हूँ'। तब उसने कहा, 'अब से मैं ऐसा नहीं कहूँगा'। मैं समझता था कि उस बेचारे की मति ही ऐसी है, उसकी नीयत ही ऐसी है, इसलिए जाने

दीजिए, लेट गो कीजिए! हम कषायों से मुक्त होने आए हैं। हम से कषाय नहीं हों इसलिए ठगे जाते हैं। दोबारा भी ठगे जाएँगे। जान-बूझकर ठगे जाने में मज़ा आएगा या नहीं? जान-बूझकर ठगे जाने वाले कम होंगे न?

प्रश्नकर्ता : होते ही नहीं।

दादाश्री : बचपन से मेरा 'प्रिन्सिपल' (सिद्धांत) रहा था कि समझकर ठगे जाना! बाकी कोई मुझे उल्लू बनाए और ठग जाए उस बात में कोई दम नहीं है। यह जान-बूझकर ठगे जाने पर क्या हुआ? ब्रेन टॉप पर पहुँच गया, बड़े-बड़े जजों का ब्रेन काम नहीं करता ऐसे काम करने लगा। जज जो होते हैं वे भी समझ के साथ ठगे जाने वालों में से एक होते हैं और जान-बूझकर ठगे जाने पर ब्रेन टॉप पर पहुँच जाता है। लेकिन देखना, तू ऐसा प्रयोग मत करना। तूने तो ज्ञान लिया है न? यह तो जब ज्ञान नहीं लिया हो तब ऐसा प्रयोग करना है।

अर्थात् जान-बूझकर ठगे जाना है, लेकिन वह किसके साथ ऐसे ठगे जाना है? जिसके साथ हमारा रोज़ाना व्यवहार हो उसके साथ! और बाहर भी कभी-कभी किसी से ठगे जाना, लेकिन समझ-बूझकर! सामने वाला समझे कि मैंने इसे ठग लिया और हम समझें कि उसे उल्लू बनाया।

धंधे में भी ओपन टु स्काइ

धंधे के बारे में तो मैं सबकुछ जैसा हो वैसा ही बता देता था। तो एक आदमी कहने लगा कि, 'ऐसा क्यों बता देते हैं?' तब मैंने कहा कि, 'जिसे लोगों के पास से रुपया लोन (कर्ज) पर लेना हो वह गुप्त रखेगा। हमें किसी लोन की ज़रूरत नहीं है। और यदि कोई देना चाहें तो सरेआम दे। हमारा तो ओपन टु स्काइ जैसा है। इसलिए बता देता था कि इस साल बीस हज़ार का घाटा हुआ है। यह मैं ओपन ही कह देता। झंझट ही नहीं न!'

हिसाब मिला और चिंता समाप्त

ज्ञान होने से पहले हमारे धंधे में एक बार क्या हुआ कि एक साहब ने हमारा अचानक दस हज़ार का नुकसान कर दिया, हमारा एक काम साहब ने अचानक नामंजूर कर दिया। उन दिनों दस हज़ार रुपए की बहुत बड़ी कीमत थी, आज तो दस हज़ार किसी गिनती में नहीं है न! मुझे उस दिन गहरा धक्का लगा और चिंता होने लगी। वहाँ तक बात जा पहुँची थी। तब उसी क्षण मुझे भीतर से आवाज़ सुनाई दी कि, 'इस धंधे में हमारी खुद की पार्टनरशिप कितनी?' उन दिनों हम दो पार्टनर थे, फिर मैंने हिसाब लगाया कि दो पार्टनर तो कागज़ पर हैं, लेकिन वास्तव में कितने हैं? वास्तव में तो मेरी घर वाली, पार्टनर की वाइफ उसके बेटे-बेटियाँ, ये सारे पार्टनर ही कहलाए न! तब मुझे लगा कि इन सभी में से कोई चिंता नहीं करता, तो मैं अकेला सारा बोझ अपने सिर पर क्यों लूँ? उस दिन मुझे इस विचार ने बचा लिया। बात सही है न?

यदि घाटे की अपेक्षा करें तो?

हमने सारी ज़िंदगी कॉन्ट्रैक्ट का धंधा किया है। तरह-तरह के कॉन्ट्रैक्ट किए हैं। उनमें समंदर में जेटियाँ भी बनाई हैं। अब वहाँ पर धंधे की शुरुआत में क्या करता था? जहाँ पर पाँच लाख का मुनाफा होने वाला हो वहाँ पहले से ही तय कर लेता था कि यदि लाख रुपए मिल जाएँ तो काफी है, नहीं तो नफा-नुकसान न हो और इन्कम टैक्स भर पाए व हमारा खर्चापानी निकल जाए तो मानो बहुत हो गया। और बाद में तीन लाख मिलें तब मन में कैसा आनंद रहेगा? क्योंकि धारणा से अधिक जो मिल गए। यह तो धारणा हो चालीस हज़ार की और यदि बीस हज़ार मिलें तो दुःखी-दुःखी हो जाए।

देखिए, तरीका ही पागलों जैसा है न! जीवन जीने का तरीका ही पागलों जैसा है न! और यदि कोई पहले से घाटा ही निर्धारित करे तो उसके जैसा सुखिया तो और कोई हो ही नहीं सकता। घाटे का ही उपासक हो, फिर जीवन में घाटा आने वाला ही नहीं!

मतभेद मिटाने के लिए मुसीबतें झेलीं

साझेदार के साथ हमने पैंतालीस साल साझेदारी की, लेकिन एक भी मतभेद नहीं हुआ। उसके लिए कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ी होंगी? अंदरूनी मुसीबतें तो होती हैं न? क्योंकि इस दुनिया में मतभेद यानी क्या? कि मुसीबतें झेलना।

परिणाम स्वरूप, साझेदार ने देखे भगवान

अर्थात् ज्ञान होने से पहले भी हमने मतभेद नहीं होने दिया था। खटमल के साथ भी मतभेद नहीं। खटमल भी बेचारे समझ गए थे कि ये बिना मतभेद के मनुष्य हैं, हम अपना क्वोटा (हिस्सा) लेकर चलते बनें।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप जो दे दिया करते थे, वह पिछला सेटलमेन्ट (हिसाब चुकता) हो रहा था या नहीं, इसका क्या प्रमाण?

दादाश्री : सेटलमेन्ट ही। यह कोई नई बात नहीं है। सवाल सेटलमेन्ट का नहीं लेकिन अब नए सिरे से भाव बिगड़ना नहीं चाहिए। यह तो सेटलमेन्ट है, इफेक्ट (परिणाम) है। उस समय नया भाव नहीं बिगड़ता। हमारा नया भाव पुख्ता होना चाहिए कि यह जो हो रहा है वही करेक्ट (सही) है।

प्रश्नकर्ता : इससे क्लेश में से मुक्ति भी रहेगी।

दादाश्री : हाँ, सहन करने पर क्लेश में से मुक्ति भी रहती है और सिर्फ क्लेश-मुक्ति ही नहीं, साथ ही सामने वाला व्यक्ति, साझेदार और उसके सारे परिवार की उर्ध्वगति भी होगी। हमारा ऐसा देखकर उसका भी मन विशाल हो जाएगा। संकीर्ण मन विशाल हो जाएँगे। साझेदार भी रात-दिन साथ रहने के बावजूद हमारा ऐसे ही सत्कार किया करते थे कि 'दादा भगवान आइए, आप तो भगवान ही हैं'। देखिए, साझेदार को मुझ पर प्रेम आया कि नहीं? साथ रहे, मतभेद नहीं हुआ और प्रेम उत्पन्न हुआ! ऐसी परिस्थिति में उनको कितना लाभ होगा!

अपने खुद के लिए मैंने कुछ नहीं किया। वह धंधा तो अपने आप चलता था। हमारे साझेदार इतना कहते थे कि, 'आप यह जो आत्मा से संबंधित सब करते हैं, वह करते रहिए और दो-तीन महीने में एकाध बार कार्य का निर्देश दे जाना कि 'ऐसे करना'। बस वे मुझसे इतना ही काम लिया करते थे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन, साझेदार का भी कुछ अंदाज़ तो होगा न, कुछ पाने का? साझेदारी करेंगे, तो खुद को कुछ लाभ होता हो तभी साझेदार बनाएँगे न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो उस समय उन्हें कौन सा लाभ हुआ?

दादाश्री : उन्हें सांसारिक रूप से, पैसों के मामले में बहुत लाभ हुआ। वह तो अपने बेटों को कह गए थे कि दादाजी की उपस्थिति वह श्रीमंताई है। मुझे कभी भी पैसों की कमी नहीं आई है।

5. जीवन में नियम

टेस्टेड किया अपने आपको

1961-62 में मैंने एक बार कहा था कि, 'जो मुझे एक थप्पड़ मारेगा, उसे मैं पाँच सौ रुपए दूँगा'। लेकिन कोई थप्पड़ मारने ही नहीं आया। मैंने कहा, 'अरे, पैसों की कमी हो तो लगा दे न!' तब कहें, 'नहीं, मेरी क्या गत होगी?' कौन मारे? ऐसा कौन करे? अगर कोई मुफ्त में मारे तो उस दिन अपना महा पुण्य समझना चाहिए कि आज हमें इतना बड़ा पुरस्कार मिला। उसे तो बहुत बड़ा पुरस्कार समझना चाहिए। पहले हमने भी यदि देने में कोई कसर नहीं छोड़ी हो न, वही वापस आता है!

मैं क्या कहना चाहता हूँ कि इस दुनिया का क्रम कैसा है कि आपको जो कमीज़ 1995 में मिलने वाली है तो यदि उसे आपने आज उपयोग में ले लिया, तो 1995 में बिना कमीज़ के रहना पड़ेगा,

मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ, ताकि आप उसे सलीके से उपयोग में लाएँ। प्रयोग किए बिना किसी चीज़ को निकाल मत देना और यदि निकालनी पड़े तब भी कहीं न कहीं बेकार लगने के पश्चात् ही निकाली जाए तो अच्छा! ऐसा मेरा नियम रहा है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इतनी घिसाई अभी नहीं हुई तो उस चीज़ निकालना नहीं। क्योंकि थोड़ी सी छीज हुई हो और अभी चीज़ काम में लाई जा सकती हो, उसे यों ही निकाल फेंकना, वह तो मिनिंगलेस (अर्थहीन) ही कहलाए न! अर्थात् ये सारी चीज़ें जो आप उपयोग में लाते हैं, उसका कोई हिसाब तो होगा कि नहीं होगा? उसका हिसाब है और कहाँ तक का हिसाब है? एक-एक परमाणु तक का हिसाब है, बोलिए! वहाँ अंधेर कैसे चलने वाला है? 'व्यवस्थित' का ऐसा नियम है, परमाणु तक का हिसाब है। इसलिए कुछ बिगाड़ना नहीं।

संसार में पोल नहीं चलता

ज्ञानी पुरुष को त्यागात्याग संभव नहीं, फिर भी मुझे पानी का बिगाड़ करना पड़ता है। हमें पैर में जो फ्रेक्चर हुआ, उसके कारण विलायती संडास में बैठना पड़ता है, जहाँ पानी के लिए जंजीर खींचनी पड़ती है और दो डिब्बे पानी बह जाता है। यह किसलिए कहता हूँ? पानी की कमी है अथवा पानी कीमती है इस कारण? नहीं, पानी के कितने ही जीव यों ही बिना वजह टकरा-टकराकर मारे जाते हैं। जहाँ कम पानी से काम हो सकता है वहाँ इतना सारा बिगाड़ क्यों किया जाए? यद्यपि मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ इसलिए भूल होते ही तुरंत दवाई डाल (प्रतिक्रमण कर) देता हूँ। फिर भी दवाई तो हमें भी डालनी होगी, क्योंकि वहाँ ज्ञानी पुरुष हो या जो कोई भी हो, किसी की चलती नहीं है। यह कोई अँधेर नगरी में गंडु राजा का राज नहीं है, बल्कि वीतरागों का शासन है। चौबीस तीर्थंकरों का शासन है। आपको पसंद है तीर्थंकरों की ऐसी बात!

जागृति, जुदापन की

मुझे कभी-कभी बुखार चढ़ता है तब कोई आकर पूछे कि,

'आपको बुखार आया है क्या?' तब मैं कहता हूँ कि, 'हाँ, भैया ए.एम.पटेल को बुखार आया है, जिसे मैं जानता हूँ'। 'मुझे बुखार आया' ऐसा कहूँ तो मुझसे लिपट जाएगा। खुद के लिए जैसी कल्पना करेगा तुरंत ही खुद वैसा हो जाएगा। इसलिए मैं ऐसा नहीं बोलता कि 'मुझे बुखार आया है'।

'हमारे' अनुभव की बात

मैं फर्स्ट क्लास में रेलयात्रा नहीं करता, क्योंकि दूसरे पैसन्जर पीछे पड़ जाते हैं। मुझे उल्टा-सीधा बोलना नहीं आता, वे पूछें कि आपका पता-ठिकाना क्या है, तब मैं सही-सही बता दूँ और वे खोजते हुए घर पर आ धमकें। अर्थात् यह बेकार का झंझट क्यों मोल लेना? इसकी तुलना में मेरे सगे भाईयों जैसे थर्ड क्लास के पैसेंजर अच्छे हैं। तात्पर्य क्या है कि आने-जाने पर किसी की ठोकरें लगें तो अंदरूनी कषाय भाव क्या हैं इसका पता चले। किसी की ठोकर लगने पर भीतरी कमज़ोरियों का पता चलता है। इस तरह सारी कमज़ोरियाँ खत्म हो सकती हैं।

रेलयात्रा पूरी होने के बाद जब पैर दुखने लगे तब क्या कहता हूँ, 'अंबालाल भाई, आपके पैरों में बहुत दर्द हुआ, नहीं? थक गए हैं क्या? सिकुड़कर बैठना पड़ा इसलिए पैर दुःखते होंगे'। फिर बाथरूम में ले जाकर पीठ थपथपाऊँ, 'मैं हूँ न, आपके साथ, डरते क्यों हैं? हम शुद्धात्मा भगवान, हैं न आपके साथ'। ताकि फिर से फर्स्ट क्लास हो जाए।

मुसीबत आने पर पीठ थपथपाकर कहना। ज्ञान होने से पहले अकेले थे, अब दो हुए। पहले तो किसी का भी सहारा नहीं था। खुद ही अपने आप सहारा ढूँढते रहे। अब एक से दो हुए। ऐसा कभी किया था या नहीं?

प्रश्नकर्ता : किया था।

दादाश्री : उस समय हमें अलग तरह का महसूस होता है न?

मानों सारे ब्रह्मांड के राजा हों ऐसे बोलना चाहिए। अपने अनुभव की सभी बातें मैंने आपको बता दीं।

मैं 'ए.एम.पटेल' के साथ बहुत बातें किया करता था। उन्हें अच्छी लगें ऐसी बातें किया करता था। हम भी इतने बड़े छिहत्तर साल के अंबालाल भाई से ऐसा कहते हैं न! 'छिहत्तर साल हुए, कुछ सयाने हुए हैं? वह तो अनुभव से सही ज्ञान पाकर सयाने हुए हैं'।

प्रश्नकर्ता : आप कब से बातें किया करते थे?

दादाश्री : ज्ञान होने के बाद। पहले तो कैसे बात करता मैं? 'मैं अलग हूँ' ऐसा भान हुआ उसके बाद में।

जब ब्याहने बैठे थे उसे याद करके अंबालाल से कहा कि, 'ओहोहो! आप तो ब्याहने बैठे थे न! क्या! फिर सिर पर से पगड़ी खिसक गई थी, फिर आपको विधुर होने का विचार आया था' ऐसा भी सुनाता था मैं। ब्याहते समय का लग्न मंडप, पगड़ी कैसे सरक गई थी, सब नज़र आता था। विचार आते ही नज़र आता था। हम बोलें और उन्हें आनंद आए। ऐसी बात करने पर वे खुश हो जाते।

(6) पत्नी हीरा बा के साथ एडजस्टमेन्ट

मतभेद टालने के लिए सावधानी ही बरती

ब्याहते समय बताते हैं, 'समयानुसार सावधान'। यह जो पंडित जी कहते हैं वह सही है, समय आने पर सावधान रहने की आवश्यकता है, इसी शर्त पर संसार में ब्याहा जाता है। वह यदि उछल पड़ी हो और हम भी उछल पड़ें, वह असावधानी कहलाए। वह जब उछल पड़े तो हम शांत हो जाएँ। सावधानी बरतना ज़रूरी नहीं क्या? ऐसे हम सावधानी बरतते थे। दरार-वरार होने नहीं देते थे। दरार पड़ने की नौबत आने पर वेल्डिंग कर देते थे।

तीस साल की उम्र में ही मैंने सब रिपेयर कर दिया था। घर में फिर झंझट ही नहीं, मतभेद ही नहीं। यद्यपि पहले हमारा उनसे

बखेड़ा होता था, वह नासमझी का बखेड़ा था। क्योंकि स्वामित्व जताने गए थे।

प्रश्नकर्ता : सभी जो स्वामित्व जताते हैं वह और दादाजी आप जो स्वामित्व जताते होंगे, उसमें अंतर तो होगा ही न?

दादाश्री : अंतर? कैसा अंतर? स्वामित्व जताना यानी पागलपन! मेडनेस कहलाए! अंधेरे के कितने भेद होते हैं?

प्रश्नकर्ता : फिर भी आपका थोड़ा अलग तरह से होता होगा न? आपका तो कुछ नई तरह का ही होगा न?

दादाश्री : थोड़ा अंतर था। एक बार मतभेद बंद करने के बाद फिर से उस बात पर मतभेद होने नहीं दिया। और यदि हो जाए तो हमें मोड़ना आता है। मतभेद तो प्राकृतिक रूप से हो जाएगा, क्योंकि मैं उनके भले के खातिर कहता होऊँ, फिर भी यदि उन्हें उल्टा लगे तो फिर उसका क्या उपाय है? सही-गलत करने जैसा ही नहीं है इस संसार में। जो रुपया चला वह खरा और जो नहीं चला वह खोटा। हमारे तो सारे रुपए चलते हैं। आपका तो कहीं-कहीं नहीं चलता होगा न?

प्रश्नकर्ता : यहाँ दादाजी के पास चलता है, और कहीं नहीं चलता।

दादाश्री : ऐसा? ठीक है तब! ऑफिस में चलता है तो भी बहुत हो गया। यह तो दुनिया का हेड ऑफिस कहलाता है, हम ब्रह्मांड के मालिक जो ठहरे! ऐसा सुनने पर लोग प्रसन्न हो जाते हैं कि ब्रह्मांड के मालिक! ऐसा तो किसी ने कहा ही नहीं है। और बात भी सही है न! जिसका मन-वचन-काया का स्वामित्व छूट गया, वह पूरे ब्रह्मांड का मालिक ही कहा जाएगा।

पत्नी से प्रोमिस किया, इसलिए...

हीरा बा की एक आँख 1943 में चली गई। उनको ग्लुकोमा

की (आँख की) बीमारी थी। डॉक्टर उनका इलाज कर रहे थे लेकिन आँख को असर हो गया और नुकसान हो गया।

तब लोगों के मन में हुआ कि यह एक 'नया दुल्हा' पैदा हुआ। फिर से ब्याह रचाएँ। कन्याओं की भरमार थी न! और कन्याओं के माता-पिता की इच्छा ऐसी कि कैसे भी करके, कुएँ में धकेलकर भी निपटारा लाना है। इसलिए भादरण के एक पटेल आए, उनके साले की बेटी होगी, इसलिए आए। मैंने पूछा, 'क्या चाहिए आपको?' तो उन्होंने कहा, 'आप पर कैसी गुज़री?' अब उन दिनों, 1944 में मेरी उम्र छत्तीस साल की थी। तब मैंने उनसे कहा, 'क्यों? आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?' तो उन्होंने कहा, 'एक तो हीरा बा की आँख चली गई। दूसरा, उनसे कोई संतान भी नहीं है'। मैंने कहा, 'संतान नहीं है तो क्या? मेरे पास कोई स्टेट भी तो नहीं है। बड़ौदा जैसी रियासत नहीं है कि मुझे उसका उत्तराधिकारी चाहिए। यदि स्टेट होता तो संतान को देता। यह एकाध छपरिया है, थोड़ी-बहुत ज़मीन है और वह भी फिर हमें किसान ही बनाएगी न! अगर कोई स्टेट होता तो ठीक है!' और फिर मैंने उनसे पूछा कि, 'आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? हमने हीरा बा से जब शादी हुई थी तब प्रोमिस किया था। इसलिए एक आँख चली गई तो क्या हुआ! दोनों आँखें चली जाएँगी तब भी मैं उनका हाथ पकड़कर चलूँगा'। उन्होंने कहा, 'आपको दहेज दें तो कैसा रहेगा?' मैंने कहा, 'आप अपनी बेटी को कुएँ में धकेलना चाहते हैं? इससे तो हीरा बा को दुःख होगा। हीरा बा को दुःख होगा कि नहीं होगा? उनको लगेगा कि मेरी आँख चली गई इसलिए यह नौबत आई न!' हमने तो प्रोमिस टु पे किया है (वचन दिया है)। मैंने उनसे कहा, 'मैं किसी भी हालत में मुकरने वाला नहीं, चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाए तब भी प्रोमिस यानी प्रोमिस!' क्योंकि मैंने प्रोमिस किया है, प्रोमिस करने के बाद मुकरते नहीं। हमारा एक जन्म उसके लिए! क्या तबाही हो जाएगी उससे! शादी के मंडप में हाथ थामा था, हाथ थामा यानी प्रोमिस किया हमने और सभी की हाज़िरी में प्रोमिस किया था। क्षत्रिय के तौर पर हमने जो

प्रोमिस किया है, उसके लिए एक अवतार न्योच्छावर कर ही देना चाहिए।

कैसी समझ? कैसा एडजस्टमेन्ट?

हम भी ऐसे हैं कि यदि कढ़ी खारी आए तो कम खाएँगे। यदि कढ़ी खाए बिना नहीं चला सकें तो धीरे से उसमें थोड़ा पानी मिला देंगे। खारी हो गई हो तो थोड़ा पानी मिलाने पर खारापन तुरंत कम हो जाता है। एक दिन हीरा बा ने देख लिया तो वह चिल्ला उठीं, 'यह क्या किया? यह क्या किया? आपने उसमें पानी डाला?' तब मैंने कहा कि, 'पानी डालकर चूल्हे पर पकाते हैं, तब थोड़ी देर के बाद दो उफान आते हैं न, तो आप समझती हैं कि पक गई और यहाँ मैंने पानी मिलाया इसलिए कच्ची है ऐसा आप समझती हैं लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है'। लेकिन वे क्या ऐसे मानने वाली थी? नहीं खाने देतीं। चूल्हे पर भी तो पानी ही मिलाते हैं न?

यह तो सभी मन की मान्यताएँ हैं। मन ने यदि ऐसा मान लिया तो उसे सही समझेंगे, वर्ना कहेंगे कि बिगड़ गया। लेकिन कुछ बिगड़ता ही नहीं है न! सभी चीज़ें वही के वही पाँच तत्त्वों से बनी हैं : वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश! इसलिए कुछ भी बिगड़ता नहीं है।

निरंतर जागृति यज्ञ से फलित 'अक्रम विज्ञान'

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी आपने जो किया, पानी मिलाया, वह कितनी जागृति के साथ किया होगा? उन्हें दुःख नहीं हो इसलिए आप कहना नहीं चाहते थे कि, नमक ज़रा ज़्यादा हो गया है, इसलिए पानी मिलाया।

दादाश्री : हाँ, अरे कई बार तो चाय में शक्कर नहीं होती थी, तब भी हमने नहीं बोला। तब लोग कहते कि, 'ऐसा करोगे तो घर बिगड़ जाएगा।!' मैं कहता, 'कल देख लेना आप'। फिर दूसरे दिन वे कहतीं कि, 'कल चाय में शक्कर नहीं थी फिर भी आपने कुछ

कहा नहीं हम से?' मैंने कहा, 'मुझे आपसे कहने की क्या ज़रूरत? आपको मालूम होने वाला ही था! अगर आप चाय नहीं पीने वाली होती तो मुझे कहने की ज़रूरत पड़ती। लेकिन आप भी चाय पीती हैं, फिर मैं क्यों आपको कहूँ?'

प्रश्नकर्ता : कितनी जागृति रखनी पड़ती है पल-पल!

दादाश्री : प्रत्येक क्षण, चौबीस घंटे जागृति, उसके बाद यह ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह ज्ञान यों ही नहीं प्राप्त हुआ है।

हम यह जो कुछ बोलते हैं न, वह आपके पूछने पर उस जगह का दर्शन उभरता है। दर्शन यानी यथापूर्वक जैसे हुआ हो वैसे नज़र आना। जैसे हुआ था वैसे तादृश्य नज़र आए।

मतभेद से पहले ही सावधान

हम में कलुषित भाव नहीं रहे तो सामने वाले को भी कलुषित भाव नहीं होगा। हमारे नहीं चिढ़ने पर वे भी शांत हो जाएँगे। दीवार समान हो जाना ताकि सुनाई नहीं दे। हमें पचास साल हो गए लेकिन कभी भी मतभेद नहीं हुआ। हीरा बा के हाथ से घी गिर रहा हो फिर भी मैं चुपचाप देखता ही रहता। उस समय हमारा ज्ञान हाज़िर रहता कि वे घी गिरा ही नहीं सकतीं। मैं यदि कहूँ कि गिराओ तब भी वे नहीं गिराएँगी। जान-बूझकर कोई घी गिराता होगा? नहीं। फिर भी घी गिर जाता है न! वह देखना है। हमें मतभेद होने से पहले ज्ञान ऑन द मोमेन्ट (तत्क्षण) हाज़िर रहता है।

प्रकृति को पहचानकर समाधान से पेश आएँ

हमारे घर में कभी भी मतभेद नहीं हुआ। हम ठहरे पाटीदार इसलिए हम से गिरकर हिसाब नहीं होता। यानी जब घी परोसना होता, तब घी का पात्र आहिस्ता-आहिस्ता, हिसाब से परोसा जाए ऐसे नहीं झुकाते थे। फिर कैसे झुकाते होंगे हम? यों सीधे नाइन्टी डिग्री पर ही! और अन्य लोग तो क्या करेंगे? वहाँ देखें तो, हर समय

डिग्री-डिग्री वाला (थोड़ा-थोड़ा, एकदम से उँड़ेलते नहीं)। ये हीरा बा भी डिग्री-डिग्री वालों में से थीं। यह सब मुझे नहीं भाता था और मन में होता था कि यह तो हमारा बुरा दिखता है। लेकिन हमने प्रकृति को पहचान लिया था कि यह ऐसी प्रकृति है। अत: यदि हमने कभी उँडेल दिया तो वह चला लेगी। वह भी हम से कहा करती कि 'आप तो भोले हैं, सब को बाँटते फिरते हैं'। उनकी बात भी सही! मैंने इसलिए अलमारी की चाबी उन्हें दे रखी थी। क्योंकि यदि कोई आए और वह सचमुच दु:खी है ऐसा दिखावा करे तो समझे बगैर मैं तुरंत दे दिया करता था। मुझसे ऐसी गलतियाँ होती रहें और सामने वाले को बिना वजह एन्करिजमेन्ट (प्रोत्साहन) मिलता रहे, ऐसा हीरा बा का अनुभव था और इसलिए मैंने फिर चाबी उन्हें ही सौंप दी थी। यह सब अज्ञान दशा में होता था, ज्ञान होने के पश्चात् कभी मतभेद नहीं हुआ।

मुकर कर भी टाला मतभेद

मैं आप सभी को यह जो बता रहा हूँ वह अपने आप पर बिना ट्रायल लिए नहीं बताता हूँ। सारी बातें ट्राय करने के बाद की हैं। क्योंकि जब ज्ञान नहीं था तब भी वाइफ के साथ मेरा मतभेद नहीं था। मतभेद यानी दीवार से सिर टकराना। लोगों को भले ही इसकी समझ नहीं है लेकिन मेरी समझ में आ गया था कि 'यह खुली आँखों से दीवार से टकराया', मतभेद की वजह से!

हुआ क्या कि, एक बार हीरा बा से हमारा मतभेद हो गया। मैं भी फँसाव में आ गया। अपनी पत्नी को मैं 'हीरा बा' कहकर बुलाता हूँ। हम ठहरे ज्ञानी पुरुष, हम सभी बुज़ुर्ग स्त्रियों को 'बा' (माता) कहें और बाकी सब को 'बेटी' कहें। आप बात जानना चाहते हैं तो बता रहा हूँ, बहुत लंबी कहानी नहीं है, बात छोटी सी है।

एक बार हमारा भी मतभेद हो गया। मैं फँस गया। हीरा बा ने मुझसे कहा, 'मेरे भाई की चार बेटियाँ हैं, उनमें से सब से बड़ी बेटी की शादी है, उसे हम चाँदी की कौन सी चीज़ दें?' तब मैंने कहा,

'घर में जो भी है उसमें से दे देना'। तब वे क्या कहने लगीं? हमारे घर में 'तेरी-मेरी' शब्द का प्रयोग नहीं होता, 'हमारा-अपना' का ही प्रयोग होता है। लेकिन उस दिन उन्होंने कहा कि, 'आपके मामा के बेटों को तो इतने बड़े-बड़े चाँदी के थाल दिए हैं!' अर्थात् उस दिन बात-बात में 'मेरी-तेरी' हो गई। 'आपके मामा के बेटे' कहा, यहाँ तक नौबत आ गई! मेरी इतनी नासमझी! ऐसा मुझे लगा। मैं तुरंत मुकर गया। मुकर जाने में हर्ज नहीं है। मतभेद होने से तो मुकर जाना बेहतर है, इसलिए मैं उसी क्षण मुकर गया। मैंने कहा, 'मैं ऐसा नहीं कहना चाहता, साथ में नक़द पाँच सौ एक रुपया दे देना'। तब वे कहने लगीं कि 'क्या? आप तो भोले के भोले ही रहें! बहुत भोले हैं! इतने सारे रुपए कोई देता है कहीं?' देखिए जीत हुई न मेरी! मैंने कहा, 'पाँच सौ एक नक़द देना और चाँदी के छोटे बरतन भी देना'। तब वे क्या कहती हैं, 'आप भोले हैं। इतना सारा देते हैं कहीं?' देखिए, मिटा दिया न मतभेद! मतभेद तो होने ही नहीं दिया और ऊपर से उन्होंने हम से कहा कि, 'आप भोले हैं!' यह तो 'मेरे' भैया के यहाँ आप कम देते हैं यह विचार उनके मन में उठते, उसके बदले उन्होंने ऐसा कहा कि इतना ज़्यादा नहीं देना चाहिए।

खोटे सिक्के, भगवान के चरणों में

घर में अपना चलन नहीं रखना। जो मनुष्य चलन रखता है, उसे भटकना पड़ता है। हमने भी हीरा बा से कह दिया था कि हम खोटे सिक्के हैं। हमें भटकना पुसाता नहीं न! खोटा सिक्का किस काम का? वह भगवान के पास पड़ा रहेगा। घर में अपना अधिपत्य जमाने जाओगे तो टकराव होगा न? हमें अब 'समभाव से निकाल (निपटारा)' करना है। घर में वाइफ के साथ 'फ्रेन्ड' (मित्र) की तरह रहना है। वह आपकी 'फ्रेन्ड' और आप उसके 'फ्रेन्ड'! और यहाँ कोई नोट नहीं करता कि चलन तुम्हारा था या उनका था! म्युनिसिपालिटी में भी नोट नहीं होता और भगवान के यहाँ भी नोट नहीं किया जाता। हमें भोजन से लेना-देना है या चलन से? इसलिए अच्छा भोजन किस

प्रकार मिल सकता है, इसकी तलाश कीजिए। अगर म्युनिसिपालिटी वाले नोट रखते कि घर में किसका चलन है, तब तो मैं भी एडजस्ट नहीं होता। यह तो कोई भी नोट नहीं करता है।

जब बड़ौदा जाते हैं तब हम अपने ही घर में हीरा बा के गेस्ट की तरह रहते हैं। यदि घर में कुत्ता घुस आए तो तकलीफ हीरा बा को होगी, 'गेस्ट' को क्या तकलीफ? कुत्ता घुस आए और घी में मुँह डाले तो जो मालिक होगा उसे चिंता होगी, गेस्ट को क्या? गेस्ट तो यों ही देखता रहेगा। बहुत होने पर पूछेगा कि, 'क्या हो गया?' तब कहें कि, 'घी बिगड़ गया'। तो गेस्ट कहेगा, 'अरे, बहुत बुरा हुआ' ऐसा नाटकीय रूप से कहेगा। कहना तो पड़ेगा कि 'बहुत बुरा हुआ'। यदि हम कहें कि, 'अच्छा हुआ' तो घर से बाहर निकाल देंगे। हमें गेस्ट के तौर पर नहीं रहने देंगे।

आपके बगैर अच्छा नहीं लगता

मैं इतनी उम्र होने के बावजूद हीरा बा से कहता रहता हूँ, 'मैं जब बाहर गाँव जाता हूँ, तब आपके बगैर अच्छा नहीं लगता'। अगर मैं ऐसा न कहूँ तो वह मन में क्या-क्या सोचेगी? मुझे अच्छा लगता है तो उनको क्यों अच्छा नहीं लगता होगा? ऐसा कहने पर संसार बना रहता है। अब तू घी उँड़ेल न! नहीं उँड़ेलेगा तो रुखा-सूखा लगेगा। सुंदर भाव उँड़ेल! मैं कहता हूँ न! फिर मुझसे पूछती है, 'आपको मेरी भी याद आती है?' मैं कहूँ, 'बहुत याद आती है, दूसरे लोगों की याद आती है तो आपकी नहीं आएगी क्या?' और याद आती भी है, नहीं आती ऐसा भी नहीं है।

कितना सँभाला होगा तब?

पैंतालीस साल हो गए, हमें घर में वाइफ के साथ मतभेद नहीं हुआ है। वे भी मर्यादा में रहकर बात करती हैं और मैं भी मर्यादा में रहकर बात करता हूँ। वे किसी दिन मर्यादा के बाहर की बात करें तो मैं समझ जाता हूँ कि वह मर्यादा छोड़ रही हैं। इसलिए

मैं कह देता हूँ कि आपकी बात ठीक है, लेकिन मतभेद होने नहीं देता। एक मिनट के लिए भी उन्हें ऐसा महसूस नहीं होने देता कि वे मुझे दु:खी कर रहे हैं। हमें भी नहीं लगता कि वे हमें दु:खी करती हैं।

एक आदमी ने मुझे पूछा कि, 'वर्तमान में आपकी वाइफ के साथ आपका व्यवहार कैसा है? 'लीजिए, लाइए' कहते हैं? मैंने कहा, 'नहीं, 'हीरा बा' कहता हूँ, वह इतनी बड़ी, छिहत्तर साल की और मैं अठहत्तर का, कहीं 'लीजिए, लाइए' कहना शोभा देगा? मैं 'हीरा बा' कहकर पुकारता हूँ'। फिर वह पूछने लगा, 'आपके प्रति उन्हें पूज्यभाव है क्या?' मैंने कहा, 'मैं जब बड़ौदा जाता हूँ न, तब वे विधि करने के बाद बैठती हैं। यहाँ चरणों से सिर लगाकर विधि करती हैं। प्रतिदिन विधि करती हैं। इन सभी ने देखा है कि हमने उनकी कैसी देखभाल की है कि वह ऐसे विधि करती हैं!' किसी भी ज्ञानी की पत्नी ने ऐसे विधि नहीं की होगी। तब हमने कैसे देखभाल की होगी? इन सब बातों से आपको समझ में आया?

विषय समाप्ति के बाद का संबोधन, 'बा'

जब से हीरा बा के साथ मेरा विषय समाप्त हुआ, तब से मैं 'हीरा बा' कहकर पुकारता हूँ उन्हें। (दादाजी 35 साल की उम्र में ब्रह्मचर्य में आ गए थे।) तत्पश्चात् हमें वाइफ के साथ कोई टकराव नहीं हुआ। और पहले जो टकराव था वह विषय को लेकर! सहचर्य में तो थोड़ा-बहुत टकराव होता रहता, लेकिन जहाँ तक विषय का डंक रहता है वहाँ तक वह (अड़चन) जाने वाली है कहाँ? उस डंक के छूटने पर वह जाए। यह हम अपना अनुभव बयान कर रहे हैं। यह तो हमारे ज्ञान की वजह से ठीक है, वर्ना यदि ज्ञान नहीं होता तब तो डंक लगते ही रहते। उस हालत में अहंकार तो होगा न! उस अहंकार का एक हिस्सा 'भोग' का होता है कि 'उसने मुझे भोग लिया' और दूसरा कहे, 'उसने मुझे भोग लिया'। और यहाँ पर (ज्ञान के पश्चात्) उसका निपटारा किया जाता है। फिर भी वह डिस्चार्ज

वाली किच-किच तो रहेगी ही। लेकिन वह भी हमारे बीच नहीं थी। इस प्रकार का कोई भी मतभेद नहीं था।

(7) ज्ञानी दशा में बरते ऐसे

प्रत्येक पर्याय में से पार

ये सब तो मेरे द्वारा पृथक्करण की गई वस्तुएँ हैं, और वह (पुरुषार्थ) एक अवतार का नहीं है। एक अवतार में तो इतने सारे पृथक्करण कहाँ संभव है? अस्सी साल में कितने पृथ्थकरण कर पाएँगे भला? यह तो अनेकों अवतारों का पृथक्करण है, जो आज प्रकट हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : इतने सारे अवतारों का पृथक्करण इस समय कैसे इकट्ठा होकर प्रकट हुआ?

दादाश्री : आवरण टूटा इसलिए। सारा ज्ञान तो अंदर विद्यमान है ही। आवरण टूटना चाहिए न? ज्ञान तो जमापूंजी में है ही, लेकिन आवरण टूटने पर प्रकट हो जाता है।

सभी फेज़िज़ (पहलू) का ज्ञान मैंने खोज़ निकाला था। सभी 'फेज़िज़' में से मैं पार निकल आया हूँ और हर एक फेज़ का मैंने 'एन्ड' कर दिया है। उसके बाद यह 'ज्ञान' हुआ है।

बोलते समय भी शुद्ध उपयोग

हम जो कुछ बोलते हैं, वह उपयोग के साथ बोलते हैं। यह रिकॉर्ड बोले (मुँह से वाणी निकले), उस पर हमारा उपयोग रहता है कि, क्या-क्या भूलें हुई और क्या नहीं? स्याद्वाद में कोई गलती है, उसे हम बारीकी से देखा करते हैं और जो बोल रहे हैं वह रिकॉर्ड है। लोगों का भी रिकॉर्ड ही बोले, लेकिन वे मन में समझते हैं कि 'मैं बोला'। हम निरंतर शुद्धात्मा के उपयोग में रहते हैं, आपके साथ बात करते समय भी।

बिना विधि के क्षण भी नहीं गँवाया

हम तो इन बातों में क्या हो रहा है वही देखते हैं। हम पलभर के लिए भी, एक मिनट के लिए भी उपयोग से बाहर नहीं होते। आत्मा का उपयोग होता ही है।

हमें विधि करनी हो और मन को जैसे ही फुरसत मिले कि तुरंत अंदर विधि शुरू हो जाती है, उस समय सहज रूप से सब को ऐसा लगता है कि दादाजी इस समय किसी कार्य में व्यस्त हैं। मूड नहीं है ऐसा तो किसी को लगता ही नहीं। किसी कार्य में कार्यरत होंगे ऐसा लगता है। इस तरह हम अपना कार्य कर लेते हैं। हमें जो विधि करनी शेष रह गई हों, दोपहर में सब आ धमकें और नहीं हो पाई हो तो जब फुरसत मिले तब हो जाती है। और वह भी शुद्ध उपयोग के साथ ही होती है।

भोजन के समय, दादाजी का उपयोग...

भोजन के समय हम क्या करते हैं? भोजन करने में समय ज़्यादा लगता है। खाते कम हैं और भोजन करते समय किसी के साथ बातचीत नहीं करते, हुड़दंग नहीं मचाते। यानी कि भोजन में ही एकाग्र होते हैं। हम चबा सकते हैं इसलिए हम चबा-चबाकर खाते हैं और उसका क्या स्वाद है उसे जानते हैं, उसमें लुब्धता नहीं करते। उसमें संसार के लोग लुब्धता करते हैं, जबकि हम उसे जानते हैं। कितना मज़ेदार स्वाद है, उसे जानते हैं कि वह ऐसा था। एक्ज़ेक्ट (यथार्थ रूप से) जानना, स्वादमग्न होना और भुगतना। संसारी मनुष्य या तो भुगतते हैं या फिर स्वादमग्न होते हैं।

हम तो ठंड में भी जब हमें शाल ओढ़ाई जाती है तब ज़रा सी खिसका देते हैं। यदि ठंडी हवा लगेगी तो नींद नहीं आएगी, ऐसे करके सारी रात जागते रहते हैं। वर्ना तो खाँसी आने पर जाग ही जाते हैं, फिर उपयोग में रहते हैं।

हम कितने ही सालों से, चाहे रात में तबीयत खराब हो या

कुछ भी हुआ हो, सुबह एक्ज़ेक्ट साढ़े छः बजे जाग जाते हैं। हमारे जागने पर साढ़े छः ही बजे होते हैं। वास्तव में तो हम सोते ही नहीं हैं। रात को ढ़ाई घंटे तक हमारे भीतर विधियाँ चलती रहती हैं। साढ़े ग्यारह तक सत्संग चलता है। बारह बजे सो जाते हैं, आम तौर पर सोने का सुख, यह भौतिक सुख हम नहीं लेते।

स्टोर भी नमस्कार करे, 'ऐसे वीतराग को'

अमरीका में हमें स्टोर में ले जाते हैं। कहते हैं 'चलिए दादाजी'। जब हम स्टोर में जाएँ तब स्टोर बेचारा हमें बार-बार नमस्कार करता है, कि 'धन्य हैं आप! हम पर ज़रा सी भी दृष्टि नहीं बिगाड़ी'। पूरे स्टोर में कहीं पर भी हमारी दृष्टि नहीं बिगड़ती! हम देखते ज़रूर हैं लेकिन दृष्टि नहीं बिगाड़ते। हमें क्या ज़रूरत किसी चीज़ की? कोई चीज़ मेरे काम तो आती नहीं! तुम्हारी दृष्टि बिगड़ जाती है न?

प्रश्नकर्ता : आवश्यकता हो वह चीज़ खरीदनी पड़ती है!

दादाश्री : हाँ, हमारी दृष्टि बिगड़ती नहीं। ये स्टोर हमें दो हाथ जोड़कर नमस्कार करता है कि ऐसे पुरुष के आज तक दर्शन नहीं हुए! किसी प्रकार का तिरस्कार भी नहीं। फर्स्ट क्लास! राग भी नहीं, द्वेष भी नहीं! और हमको क्या कहते हैं? वीतराग आए! वीतराग भगवान!

विश्व में वीतराग अधिक उपकारी

यदि मैं शादी में जाऊँ तो शादी क्या मुझसे आ लिपटेगी? हम शादी में जाएँ लेकिन पूर्णतया वीतराग रहें। जब कभी मोहबाज़ार में जाएँ तब संपूर्ण वीतराग हो जाएँ और भक्ति के बाज़ार में जाने पर वीतरागता ज़रा कम हो जाएगी।

व्यवहार बिना तन्मयता का

शादी के, व्यवहारिक अवसरों को निपटाना पड़ता है। जो व्यवहारिक रूप से मैं भी निपटाता हूँ और आप भी निपटाते हैं, लेकिन

आप तन्मयाकार होकर निपटाते हैं और मैं उनसे अलग रहकर निपटाता हूँ। अर्थात् भूमिका बदलने की ज़रूरत है, और कुछ बदलने की ज़रूरत नहीं है।

ज्ञानी बरतें प्रकट आत्म स्वरूप होकर

प्रश्नकर्ता : इन तीन दिनों से मेरे मन में एक ही विचार चल रहा है कि आप पचहत्तर साल की उम्र में भी सुबह से शाम तक यों ही स्थिर बैठे रहते हैं और मैं तो यहाँ डेढ़ घंटे तक स्थिर नहीं बैठ पाता। आपमें ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है?

दादाश्री : यह शरीर पुराना ज़रूर है, लेकिन भीतर में सबकुछ जवान है। इसलिए एक ही जगह पर बैठकर दस घंटों तक मैं बोल सकता हूँ। इन लोगों ने यह देखा है। क्योंकि यह देह भले ही ऐसी नज़र आए, पचहत्तर की असर वाली, बालों को भी असर हुआ है लेकिन भीतर सबकुछ युवा है। इसलिए इस शरीर में जब कोई बीमारी आए तब इन लोगों से कहता हूँ कि, 'घबराना नहीं, यह शरीर छूटने वाला नहीं है। भीतर तो अभी जवान है सब'। ताकि उनकी स्थिरता बनी रहे। क्योंकि हमारी अंदरूनी स्थिति अलग है। एक मिनट के लिए भी मैं थकता नहीं हूँ। इस समय भी रात साढ़े तीन बजे तक हमारे साथ बैठने वाला चाहिए (यानी उसके साथ सत्संग चलता रहे।

बाकी, वैसे हमारी फ्रेशनेस (ताज़गी) कभी गई नहीं है। आप भी फ्रेश (तरोताज़ा) रहोगे, तब आपको भी महसूस होगा कि दादाजी ने हमें फ्रेश बनाया।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, उम्र तो हो गई है आपकी, फिर भी...

दादाश्री : फिर भी! उम्र तो इस देह की हुई है न, हमारी कहाँ उम्र होने वाली है? और दूसरा क्या होता है कि आप सभी को सायकोलॉजिकल इफेक्ट होता है। हमें किसी प्रकार का ऐसा सायकोलॉजिकल इफेक्ट नहीं होता कि 'मुझे बुखार आया है'। किसी

के पूछने पर ऐसा बोल देंगे, लेकिन बाद में फिर उसे मिटा देते हैं। इतनी हमारी जागृति होती है।

'मैं' 'खुद' में और 'पटेल' जगत् कल्याण की विधि में

बहुधा 'मैं' मूल स्वरूप में रहता हूँ, यानी पड़ोसी के तौर पर रहता हूँ। और थोड़े से ही टाइम के लिए इसमें से (स्वरूप में से) बाहर आता हूँ। मूल स्वरूप में रहने के कारण फिर फ्रेशनेस ऐसी ही बनी रहती है। रात को भी ज़्यादातर सोता ही नहीं हूँ। पाव घंटा ज़रा सी झपकी आ जाए उतना ही, दो वक्त मिलाकर पाव घंटा, बाकी तो सिर्फ आँखें मुँदी हुई होती हैं। इन कानों से ज़रा कम सुनाई देता है तो लोग समझते हैं कि दादाजी की आँख लग गई है और मैं भी समझूँ कि जो समझते हैं ठीक है। मुझे विधियाँ करनी होती हैं, इसलिए मैं खुद में और ए.एम.पटेल विधियों में होते हैं। अर्थात् इस संसार का कल्याण कैसे हो, उसकी सारी विधियाँ किया करते हैं। यानी वे निरंतर विधिरत होते हैं, दिन में और रात को भी विधिरत होते हैं।

प्रकृति को ऐसे मोड़े ज्ञानी

बाकी लोग तो ऐसा ही समझते हैं कि दादाजी अपने कमरे में जाकर सो जाते हैं। लेकिन इस बात में कोई तथ्य नहीं है। पद्मासन लगाकर घंटा भर बैठता हूँ, वह भी इस सतहत्तर साल की उम्र में पद्मासन लगाकर बैठना आसान है क्या? पैर भी मोड़ सकता हूँ और उसी की वजह से आँखों की शक्ति, आँखों की रोशनी सबकुछ सुरक्षित रहा है।

जो सुख मैंने पाया, वही जग पाए

मैं कहता हूँ न कि भैया मैं तो सत्ताईस सालों से (1958 में आत्मज्ञान होने के बाद) मुक्त ही हूँ, बिना किसी टेन्शन के। अर्थात् टेन्शन हुआ करता था ए.एम.पटेल को, मुझे थोड़े ही कुछ होता था? लेकिन ए.एम.पटेल को भी जब तक टेन्शन रहता है, तब तक हमारे

लिए बोझ ही है न! वह जब खत्म होगा तब हम समझें कि हम मुक्त हुए और फिर भी जब तक यह शरीर है वहाँ तक बंधन है। लेकिन अब उसके लिए भी हमें कोई आपत्ति नहीं है। दो अवतार ज़्यादा होने पर भी हमें आपत्ति नहीं है। हमारा लक्ष्य क्या है कि, 'यह जो सुख मैंने पाया है वही सुख सारी दुनिया को मिले'। और आपको क्या जल्दी है यह बताइए! आपको वहाँ पहुँचने की जल्दी है क्या?

दादाई ब्लैन्क चेक

यह 'दादाजी' एक ऐसे निमित्त हैं, कि जैसे 'दादाजी' का नाम लेने पर यदि कोई बिस्तर में बीमार पड़े हों, बिछौने में हिलना-डुलना नहीं होता हो फिर भी खड़े हो सकते हैं। इसलिए अपना काम बना लीजिए। आप जो काम करना चाहें वह हो सके ऐसा है। यानी निमित्त है ऐसा। लेकिन उसमें बुरी नीयत मत रखना। किसी के यहाँ शादी में जाने के लिए शरीर खड़ा हो जाए (तबीयत अच्छी हो जाए), ऐसा मत माँगना। यहाँ सत्संग में आने के लिए शरीर खड़ा हो ऐसा माँगना। यानी 'दादाजी' का सदुपयोग करना, उनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। क्योंकि यदि दुरुपयोग नहीं किया तो 'दादाजी' दोबारा मुसीबत के वक्त काम आएँगे। इसलिए हम उन्हें यों ही फिजूल काम में नहीं लाएँ।

अर्थात् यह तो दादाजी का ब्लैन्क चेक, कोरा चेक कहलाए। वह बार-बार मुनाफे के लिए उपयोग में लेने जैसा नहीं है। भारी मुसीबत आने पर जंजीर खींचना। सिगरेट का पैकेट गिर गया हो और हम रेल की जंजीर खींचेंगे तो दंड होगा या नहीं होगा? यानी ऐसा दुरुपयोग मत करना।

अपनापन सौंप दिया

देखिए, मैं आपको बता रहा हूँ कि मेरा तो यह खोजते-खोजते लंबा वक्त गुज़र चुका है। इसलिए आपको तो मैं आसान-सी राह

दिखाता हूँ। मुझे तो राहें ढूँढनी पड़ी थीं। आपको मैं जिस राह गया था वही राह दिखा रहा हूँ, ताले खोलने की चाबी दे देता हूँ।

यह 'ए.एम.पटेल' जो हैं न, उन्होंने खुद का अपनापन भगवान को समर्पित कर दिया है। इसलिए भगवान उन्हें हर तरह से संभाल लेते हैं। और ऐसा संभालते हैं न, सही अर्थ में! लेकिन कब से संभालते हैं? जब से खुद का अपनापन गया तब से, अहंकार जाने के बाद। बाकी, अहंकार जाना मुश्किल है।

इसलिए हमें मुंबई या बड़ौदा में कुछ लोग कहते कि, 'दादाजी, आप पहले मिले होते तो बेहतर था'। तब मैं कहता, 'गठरी के तौर पर मुझे उठा लाते हैं तब यहाँ आना होता है और गठरी की तरह उठा ले जाते हैं तब जाता हूँ'। ऐसा करने पर वे समझ जाते हैं। फिर भी कहते हैं, 'गठरी की तरह क्यों कहते हैं?' अरे, यह गठरी ही है न, गठरी नहीं तो और क्या है? भीतर पूर्ण रूप से भगवान हैं, लेकिन बाहर तो गठरी ही है न! अर्थात् अपनापन नहीं रहा है।

महात्मा सभी, एक दिन भगवान होकर रहेंगे

प्रश्नकर्ता : आपने जो बताया कि, हम सब को आप भगवान बनाना चाहते हैं, वह तो जब बनेंगे तब बनेंगे लेकिन आज तो नहीं बने हैं न?

दादाश्री : लेकिन वे होंगे न! क्योंकि यह अक्रम विज्ञान है। जो बनाने वाला है वह निमित्त है और जिसे बनने की इच्छा है वे दोनों जब आ मिलेंगे, तब होकर ही रहेंगे। बनाने वाला क्लियर (स्पष्ट) है और हमारा भी क्लियर है, हमारी और कोई वृत्ति नहीं है। इसलिए एक दिन सारे अंतराय दूर हो जाएँगे और भगवान होकर रहेंगे, जो हमारा मूल स्वरूप ही है।

जय सच्चिदानंद

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज (मुख्य केन्द्र) : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	: 9810098564	**बेंगलूर**	: 9590979099
कोलकता	: 9830093230	**हैदराबाद**	: 9885058771
चेन्नई	: 7200740000	**पूणे**	: 7218473468
जयपुर	: 8890357990	**जलंधर**	: 9814063043
भोपाल	: 6354602399	**चंडीगढ़**	: 9780732237
इन्दौर	: 6354602400	**कानपुर**	: 9452525981
रायपुर	: 9329644433	**सांगली**	: 9423870798
पटना	: 7352723132	**भुवनेश्वर**	: 8763073111
अमरावती	: 9422915064	**वाराणसी**	: 9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 795-92-DADA (3232)

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 402179706

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 91457800

www.dadabhagwan.org

यहाँ प्रकट हुए चौदह लोक के नाथ !

प्रश्नकर्ता : 'दादा भगवान' यह शब्द प्रयोग किसके लिए किया गया है?

दादाश्री : दादा भगवान के लिए, मेरे लिए नहीं है। मैं तो ज्ञानी पुरुष हूँ। दादा भगवान, जो चौदह लोक के नाथ हैं। जो आपके भीतर भी हैं, पर आप में प्रगट नहीं हुए हैं। आपके भीतर अव्यक्त रुप में बसे हैं और 'यहाँ' (हमारे भीतर) व्यक्त हो गये हैं। जो व्यक्त (प्रगट) हुए हैं, वे फल दे ऐसे है.।

– दादाश्री

dadabhagwan.org

ISBN 978-93-86289-50-6

Printed in India

Price ₹35